एक प्रतिरावण का जन्म

रणजीत

प्रकाशक : नवयुग ग्रंथ कुटीर
बीकानेर
प्रकाशन वर्ष : 1989
मूल्य : 45.00 रुपये
आवरण शिल्पी : स्वामी अमित
मुद्रक : विकास आर्ट प्रिण्टर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

EK PRATIRAVAN KA JANM by Ranjit, Published by Navayuga Grantha Kuteer, Kote Gate, Bikaner, Printed by Vikas Art Printers, Shahdra, Delhi-110032, 1989 Edition, Price Rs. 45 00 only.

अनुक्रम

कारवन

तो भारतीय शासन की कापियाँ भर रही हैं, तब तक वे जल्दी दो कापियाँ जाँच भी चुके थे। हिन्दी के परीक्षक भारतीय शासन की जाँच कापियाँ जाँच कर भी समझ नहीं पाते कि कापियाँ हिन्दी की हैं या नहीं! ऐसे जाँचते हैं लोग कापियाँ!! वे हिकारत से यही बातचीत में अपने सह-कर्मियों को बताते।

वास्तव में डॉ० शास्त्री अपने सहकर्मियों की अपेक्षा कहीं ईमानदारी से कापियाँ जाँचते थे। यही कारण है कि उनसे यह काम जल्दी निपटता भी नहीं था। साधारणतया हिन्दी में अन्य लोगों का रिजल्ट सत्तर-अस्सी प्रतिशत रहता, पर डॉ० साहब का कभी पचास से ज्यादा नहीं रहता—फिर अधिकतर बार वे कोई न कोई कापी ऐसी भी जरूर ढूँढ़ निकालते, जिसके हर प्रश्न की हर पंक्ति गलत होती, वे हर पंक्ति को लाल पेंसिल से अंडरलाइन करते और हर प्रश्न में शून्य-शून्य अंक देते हुए ग्रांड टोटल जीरो-जीरो कर देते। जब वे ऐसी कापी किसी सहकर्मी को दिखाते तो वह थोड़ा अचकचा कर कहता : हिन्दी में एक दम जीरो और वह भी एम० ए० में! गजब है! और डॉ० साहनी कापी उसकी ओर बढ़ाकर कहते—देख लीजिए एक पंक्ति इस लड़के ने सही या सरल नहीं लिखी है, कोई नम्बर दे भी तो कैसे दे? इस कापी को जाँचने में मैंने आधा घंटा लगाया कि कहीं इसके साथ अन्याय न हो जाय। मुझे तो आश्चर्य होता है कि ऐसे परीक्षार्थी बी०ए० पास करके कैसे आ गये—ऊपर ज्यादा-तर लोग लापरवाही से कापियाँ न जाँचते तो ऐसे परीक्षार्थी एम०ए० तक पहुँच ही न पाते। पर कौन देखता है?

कापियाँ जाँचने में ही नहीं अन्य मामलों में भी डॉ० साहनी अन्य शिक्षकों से अधिक ईमानदार थे। उन दिनों अनिवार्य जमा योजना नई-नई शुरू हुई थी। सभी शिक्षकों को अपने वेतन का एक अंश उस योजना में कटवाना होता। राशि भविष्य निधि कमिश्नर के आफिस में जमा होती रहती। तभी शहर में बाढ़ आयी। एक परिपत्र कालेज में आया कि जिस शिक्षक के मकान या सामान को बाढ़ से नुकसान पहुँचा हो वह अपने अनिवार्य जमा योजना के खाते से उतनी ही राशि निकलवा सकता है। जबकि पूरे कालेज की केवल एक प्राध्यापिका का मकान बाढ़ से ग्रस्त

हुआ था, सब लोगों ने बाढ़-पीड़ित होने के आधार पर अनिवार्य जमा की राशि माँगने का प्रपत्र भर दिया। और हर शिक्षक के प्रपत्र में अनुमानित नुकसान की राशि उतनी ही थी जितनी कि उसकी अनिवार्य जमा राशि में जमा थी। यानी प्राचार्य सहित प्रत्येक शिक्षक ने बाढ़ राहत के उस अवसर को अपनी पूरी अनिवार्य जमा राशि को निकलवाने का बहाना बना लिया और प्रपत्र में यह लिखकर प्रमाणित कर दिया कि बाढ़ से उनके मकान को इतनी राशि का नुकसान पहुँचा है। पर डॉ. साहनी ने उस प्रपत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। वे बोले — अपनी ही जमा राशि को अवधि से पहले लेने के लिए क्यों झूठा प्रमाण पत्र दिया जाए? प्राचार्य राय ने जो अपने आपको परम ईमानदार सिद्ध करने में नहीं [illegible] थे, थोड़े कठोर स्वर में पूछा — तो डॉ॰ साहनी आप झूठ बिल्कुल नहीं बोलते हैं? डॉ॰ साहनी ने सहज स्वर में उत्तर दिया — नहीं, ऐसी बात तो नहीं है, पर हाँ अपना ही पैसा थोड़े दिन पहले निकलवाने जैसी छोटी सी बात के लिए झूठ नहीं बोलना चाहूँगा। और वहाँ मौजूद शिक्षकों के चेहरे थोड़े फीके पड़ गये।

निकलवा कर रख लें, वही परीक्षा खत्म होने पर ले जाना भूल न जाएँ, पर तभी उन्हें लगा—सामने बैठे प्राचार्य जी कहीं अपनी आदत के अनुसार पूछ न लें, क्या करना है कारबन का ? और उन्हें यह जवाब न देना पड़े कि अब पूर्चियाँ बनाने के लिए घर ले जाना है। फिर उन्होंने एक नजर अन्य लोगों पर भी डाली। दो कक्ष-सहायक और तीन वीक्षक सामने सोफे पर बैठे थे। इन लोगों के सामने कारबन लेकर अपने हाथ की पत्रिका में रखना ठीक नहीं लगेगा। उन्होंने सोचा। तब मन ही मन निश्चय किया कि बिल्कुल घर जाते समय, जब कोई वीक्षक या सहायक कक्ष में नहीं होगा, तभी अपने आप आलमारी से कारबन लेना ठीक रहेगा। लेकिन यह निश्चय करते ही उनके भीतर के ईमानदार आदमी ने उन्हें डाँटा—क्या यार ! क्या तुम दो कारबन बाजार से नहीं खरीद सकते ? जो इतनी-सी चीज के लिए चोरों की तरह मौके की तलाश में मरे हो ? पर उनके भीतर के दुनियादार ने जवाब दिया—इसमें संकोच की क्या बात है ? क्या सभी लोग छोटे-छोटे व्यक्तिगत कामों के लिए यहाँ की स्टेशनरी का उपयोग नहीं करते ? क्या तुम्हें कल की छुट्टी लेनी हो तो तुम कार्यालय से कागज लेकर एप्लीकेशन नहीं लिखोगे ? खुद डायरेक्टर को अपना कोई व्यक्तिगत पत्र भी लिखना हो तो, यहीं से कागज नहीं लेते ? कागज, कलम, कारबन जैसी साधारण चीजों में बड़ी बेकार ईमानदारी का ढकोसला खड़ा करना ? यह केवल एक प्रकार का आत्म-प्रदर्शन है। ज्यादातर अपने आपको ज्यादा ईमानदार दिखाने की कोशिश है। अपने आपको बहलाना है। डॉ॰ साहनी थोड़ी देर सोचते रहे। फिर उन्होंने दोनों में समझौता करवाने की कोशिश की। सोचा—आलमारी से दो नये कारबन लेकर खुद [illegible] से निकलवाना तो ठीक नहीं रहेगा। लेकिन पर जो इस्तेमाल किये हुए कारबन रखे हैं; उन्हें [illegible] लिए जाने चाहिए। तब उन्होंने अपने आप से पूछा—ऐसे इस्तेमाल और फेंकनेवाले [illegible] के रखने के लिए [illegible] नहीं रहेगा ? उन्होंने एक [illegible] : [illegible] के, [illegible] रहे थे। [illegible] हो। [illegible] उनके भीतर के ईमानदार आदमी के लिए [illegible] —[illegible] रहे हैं

टाट से डॉ० साहनी की कापियों का बंडल क्यों बना रहे हो ? वे मेरे मित्र और मेहमान हैं तो टाट तुम मुझसे लो। और उन्होंने जेब से रुपये निकालकर बाजार से एक मीटर टाट मंगवाया और उसमें डॉ० साहनी की कापियाँ सिलवाईं।

घटना सुनाकर डॉ० साहनी कहते—सच्ची ईमानदारी यह है ! मैं तो मोटे तौर पर ही ईमानदार हूँ बस ! और किसी भी प्रकार की मूल्य चेतना से हीन, अपने स्वार्थ को ही सद्व्यवहार साबित करने के लिए सन्नद्ध रहने वाले आदर्श-शून्य शिक्षक खिसियाने से चेहरे से मुस्करा देते।

ईमानदारी से कापियाँ जाँचने के कारण ही डॉ० साहनी ज्यादा कापियाँ नहीं जाँच पाते थे और इसीलिए वे अन्य सहकर्मियों की तरह विभिन्न विश्वविद्यालयों से परीक्षकता पाने के लिए जोड़-तोड़ भी नहीं करते थे। जिन दो-तीन विश्वविद्यालयों से उन्हें कापियाँ मिलती थीं, उन्हें ही समय पर नहीं निपटा पाते थे। कई बार कहते थे—इन कापियों ने तो पूरी गर्मी की छुट्टियाँ बरबाद कर दीं और उनकी पत्नी कहती—यह नहीं सोचते कि दो हजार अतिरिक्त कमा भी तो लिये। कापियाँ न आतीं तो भी छुट्टियाँ तो बरबाद होती ही।

आखिर पन्द्रह दिन लगाकर आगरा विश्वविद्यालय की कापियाँ उन्होंने खत्म कर ही लीं। अंक सूची पर नजर डाली तो पाया कि इस बार विश्वविद्यालय ने ढंग बदल दिया है। पहले की तरह तीन स्तम्भों में छपे हुए रोल नम्बर वाली सूचियाँ इस बार नहीं आयी हैं। उनकी बजाय तीन रंग के कागजों में कारबन रखकर बनाई जाने वाली सूचियाँ थीं। रोल नम्बर भी भरने थे और अंक भी। डॉ० साहनी ने अपनी फाइलें टटोलीं कि कहीं दो पुराने कारबन पेपर निकल आएं तो तीन प्रतियों में अंक सूचियाँ बना दी जायें। पर वे नहीं मिले। उन्होंने सोचा, चलो दो कारबन पेपर आज कालेज के परीक्षा सचालन कक्ष से ले आएँगे। डॉ० साहनी स्वयं इस कालेज में चल रही परीक्षा के सहायक केन्द्राध्यक्ष थे। कपड़ा, कागज, कैंची, कारबन, सारा सामान, उनकी देखरेख में था। परसों का [illegible] आया, भोलेराम से दो कारबन पेपर

एक रुपट्टी की चीज़ के लिए तुम कैसे चोरों की तरह मौके की तलाश कर रहे हो। घबरा रहे हो? जब निस्संकोच भाव से तुम दो प्रयुक्त कारबन भी अपने काम के लिए उठा नहीं सकते हो, इसका मतलब ही है कि यह काम गलत है और तुम्हें नहीं करना चाहिए। एक बार जब तुमने सोच लिया कि दो कारबन बाजार से खरीद लिये जाएँगे, तब फिर-फिर मुफ्त के कारबनों के मोह में क्यों पड़ जाते हो? मैं तो सोचता था तुम्हारी ईमानदारी का स्तर काफी ऊँचा है। पर यार तुम तो बिल्कुल बेकार निकले! अपनी अनिवार्य बचत की वापसी को लेकर तुमने कॉलेज में अपनी ईमानदारी की बड़ी धौंस जमाई। वह पैसा तो देर-सवेर मिलना ही था। फिर वह तुम्हारा अपना पैसा था, किसी और का नहीं। और यहाँ मामला मुफ्त में दो कारबन प्राप्त करने या नहीं करने का है। पर इतनी छोटी-सी फिसलन पर तुम टिके नहीं रह सके। चोरों की तरह मौका तलाशने लगे। धिक्कार है तुम्हें और तुम्हारी ईमानदारी को।

अब डॉ० साहनी ने पक्का निश्चय कर लिया कि प्रयुक्त या नये, विश्वविद्यालय की स्टेशनरी से कोई भी कारबन उन्हें नहीं लेने हैं। अपने ईमानदार बने रहने के निश्चय पर वे प्रसन्न हो उठे। उनका मन किया, अपने सहकर्मियों को अपने अब तक के अन्तर्द्वंद्व और अपने अन्तिम निर्णय के बारे में बताएँ। बताएँ कि बड़े-बड़े मामलों में ईमानदार बना रहना तो फिर भी सरल है, पर छोटी-छोटी चीजों में ईमानदारी बरतना कितना मुश्किल है। पर फिर उन्होंने सोचा: यह इच्छा भी आत्म प्रदर्शन की है। अपनी ईमानदारी की धौंस जमाने की आकांक्षा मात्र इच्छा मात्र! आखिर एक बिल्कुल सामान्य, साधारणतया सभी साधारण कर्मचारियों से अपेक्षित, इस छोटे से काम को इतना महत्वपूर्ण माना ही क्यों जाय कि उसकी चर्चा हो। और वे चुपचाप अपना स्कूटर उठाकर घर की ओर चल पड़े।

एक प्रतिरावण का जन्म

रावण के अत्याचारों से पीड़ित ऋषि-मुनियों, वानर-भालुओं और गिरि-जनों-पुरजनों की खुशी का पारावार न रहा, जब उन्होंने सुना कि रावण के वध के लिए स्वयं विष्णु भगवान ने राम के रूप में अवतार लिया है। देवताओं ने फूल बरसाये, प्रजाजनों ने खुशियाँ मनाईं। धीरे-धीरे राम बड़े होने लगे। शास्त्रों और शस्त्रों में निपुणता प्राप्त करने लगे। गुरु विश्वामित्र की देख-रेख में वे दुष्ट राक्षसों से यज्ञों की रक्षा करने लगे। इस बीच राजा जनक ने स्वयंवर आयोजित किया और अपने अतुल बाहुबल से शिव का विशाल पुराना धनुष तोड़ कर राम ने सीता से विवाह किया। एक के बाद एक घटना दैविक योजना के अनुसार घटती चली गयी—मंथरा ने कैकेयी को प्रेरित किया, कैकेयी ने राम का वनवास माँगा, दशरथ ने अपना वचन पूरा किया और राम के वियोग में दिवंगत हो गये। राम, सीता और लक्ष्मण वन को चले। अपने विनाश के लिए नियतिबद्ध रावण साधु का वेश धारण कर, सीता का अपहरण कर, उसे अपनी अशोक-वाटिका में ले गया।

रावण के विनाश की स्थितियाँ परिपक्व होने लगीं। राम ने वनवासी वानरों और भालुओं को, रावण के अत्याचारों से पीड़ित आदिवासी भू-जनों की सेना संगठित की और रावण की राजधानी, सोने की लंका, पर एक निर्णायक आक्रमण की तैयारियाँ करने लगे। उनके कुशल और विलक्षण भक्त अन्य भक्तों को अस्त्र-शस्त्र की दीक्षा देने लगे। जमीनें साफ की जाने लगीं, शिविर लगने लगे। राम के सेनानायकों के लिए आवास तैयार होने लगे, पूरी [illegible] बस गयी। राम की सेना अविजित हो, इसके लिए [illegible] और

लकड़ी के साधारण हथियारों से लैस। राम के भक्त दिन भर की मशक्कत से अपने भोजन वस्त्र की व्यवस्था करते थे और फिर रात के समय सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। उनकी छावनी में सचमुच राम-राज्य था। चारों तरफ समानता, स्वतन्त्रता और भाईचारे का वातावरण था। उधर रावण के सैनिकों के पास न केवल परिष्कृत हथियार थे, उन्हें राजकोष से भारी वेतन और भत्ते मिलते थे, उनकी सुरक्षा और सुविधा की भारी व्यवस्था थी। तभी रावण का सगा भाई विभीषण रावण के हाथों अपमानित होकर राम का शरणागत हुआ। राम के भक्तों ने उसका भारी स्वागत किया। उन्हें लगा कि विभीषण के रूप में अब रावण की शक्ति का रहस्य और उसके वैभव का ही एक अंश उनके हाथ लग गया है। राम ने विभीषण को अपना प्रमुख परामर्शदाता और रावण का उत्तराधिकारी घोषित किया। विभीषण ने उन्हें समझाया कि इस तरह के अस्त्र-शस्त्र विहीन, अधभूखे, अधनंगे, अप्रशिक्षित सैनिकों से रावण की विशाल वाहिनी को पराजित करना और सीता को पुनर्प्राप्त करना संभव नहीं होगा। इसके लिए संगठन और प्रशिक्षण की नवीनतम विधियाँ प्रयुक्त करनी होंगी। नये प्रशिक्षक और व्यवस्थापक नियुक्त करने होंगे। उनकी सुख-सुविधा के लिए राजकोष एकत्र करना होगा। प्रजाजनों की उपज का एक भाग अनिवार्य रूप से जमा करना होगा। बात राम की समझ में आ गयी।

धीरे-धीरे राम का शिविर राजधानी में बदलने लगा, उनके सेनापति, सामन्तों में। रामभक्तों का सैनिकीकरण शुरु हुआ। उनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगने लगे। उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए अपने नायकों की अनुमति लेनी पड़ती। अपने प्रतिदिन के कार्य का लेखा-जोखा लिखना पड़ता। उन्हें कार्य के अनुसार वेतन मिलने लगा। कठोर अनुशासन से परेशान होकर उनमें से कुछ अपनी टुकड़ियों से भागने लगे। यह भी सुनने में आया कि रावण के गुप्तचर उन्हें प्रलोभन देकर लंका की सेना में भरती हो जाने के लिए बहका रहे हैं। राम ने अपने विश्वस्त सभासदों से मंत्रणा की। निश्चय किया गया कि रामराज्य के आस-पास कँटीले तारों की एक बाड़ लगा दी जाए ताकि कोई भाग कर लंका में न जा सके। जो चोरी-छुपे भागने की कोशिश करे, उसे राक्षसों का समर्थक

समझकर मौत के घाट उतार दिया जाये। क्योंकि भले ही राम ने राजकोष एकत्र कर लिया था, राजधानी बसा ली थी, राज्य का सारा तामझाम खड़ा कर लिया था, फिर भी रावण जैसा ऐश्वर्य ना उनके पास नहीं हो था। व अपने सैनिकों का उतनी सुख सुविधाएं ना नहीं हो दे सकते थे। निदान कटीले तारों की बाड़ तैयार हुई। युद्धस्तर पर यह कार्य हुआ। किसानों व हलों और लकड़हारों की कुल्हाड़ियों के काम में आने वाला लोहा कटीले तारों में लगा दिया गया। बाड़ के साथ-साथ हथियार-बंद पहरेदार खड़े कर दिये गए। जनसाधारण की आर्थिक स्थिति और बिगड़ने लगी। राशन की दुकानों पर लम्बी-लम्बी कतारें दिखाई देने लगीं। दैनिक जीवन की साधारण आवश्यकताएं दूभर होने लगीं। पर साथ ही साथ राम के सभासदों और सामन्तों के घर भरने लगे। ऐशोआराम के जो थोड़े बहुत साधन राम-राज्य में मौजूद थे, वे उनके यहाँ एकत्र होने लगे। इन सभासदों में से अनेक सात की लंका में रामदूत बनकर रावण से युद्ध और संधि के नियम-उपनियमादि पर विचार-विमर्श के लिए जाने लगे। ये लोग लंका से ऐश्वर्य के नये-नये साधन अपने साथ लाने लगे।

राम-रावण युद्ध लम्बा खिंचता चला गया। राम के जिन भक्तों को प्रारंभ में पूरा विश्वास था कि शीघ्र ही राम अपनी सत्य और न्याय की दिव्य शक्तियों के बल पर अन्यायी और अत्याचारी रावण का वध कर सीता को फिर से प्राप्त करने में सफल होंगे, उनमें से अनेक को अब यह एक दुराशा ही लगने लगी। युद्ध और उसके साथ जुड़ी हुई कठिनाइयाँ उनकी दिनचर्या ही बन गयीं। राम के सुविधाभोगी सभासदों और सामन्तों की रुचि भी अब युद्ध के निर्णायक दौर में पहुंचने और रावण के समाप्त होने में अधिक नहीं रही। उन्हें लगने लगा कि यह युद्ध इसी तरह अनन्त काल तक चलता रहे, तो अच्छा है।

इधर स्वयं राम पर भी उनकी नवप्राप्त राजलक्ष्मी ने अपना प्रभाव जमाना शुरू कर दिया। रावण के साथ युद्ध उनके लिए भी एक सामान्य दिनचर्या-सा बन गया। प्रतिदिन नियमित समय पर दोनों पक्षों द्वारा स्वीकृत नियमों के अन्तर्गत दोनों की सेनाएं युद्ध करतीं और नियमित समय पर समाप्त भी कर देतीं। नियमित ढंग से दोनों पक्षों के बीच सुलह-

गणमान्यों के साथ विचार-विमर्श भी होता रहता। सुदीर्घकालीन युद्ध के इस लम्बे दौर में राम को भी यह लगने लगा कि ज्यों-ज्यों उनकी सेना अपनी शक्ति बढ़ाती जा रही है, रावण भी नयी-नयी विधियों का आविष्कार करके अपनी शक्ति बढ़ाता जा रहा है। उसे एकदम पराजित कर समाप्त कर देना उतना सरल नहीं है। फिर भी वे यह बात अपने भक्तों में से किसी से कहते इस भय से नहीं थे कि कहीं उनका मनोबल न गिर जाय। सीता को प्राप्त करने तक युद्ध करते रहना उनका घोषित उद्देश्य बना रहा।

एक दिन उन्होंने सोचा : क्या यह उचित नहीं होगा कि रावण को उसी के तरीकों से परास्त किया जाय? आखिर शास्त्रों ने भी शठों के साथ शठता को उचित बताया है। उसने कपट से सीता का हरण किया—मैं भी क्यों न उसे नीचा दिखाने के लिए उसी तरह कपट से मन्दोदरी को भगा लाऊँ। उन्होंने अपने विश्वस्त सभासदों के सामने यह विचार रखा। सभी ने एक मत से उसका समर्थन किया, क्योंकि उनमें से कोई भी अब यह नहीं चाहता था कि राम रावण का वध करके और सीता को लेकर अयोध्या लौट जाएँ। क्योंकि वैसी स्थिति में उसकी सोने की लंका को नष्ट करने के लिए खड़ी की गयी उनकी यह छोटी-सी लंका भी उजड़ जाती। तमाम वानर-भालू फिर से पहले की तरह स्वतंत्र वन में विचरण करने लगते और उनके दिन-रात कठोर परिश्रम से प्राप्त यह ऐश्वर्य राम के सभासदों और सामन्तों से छिन जाता।

इस तरह जिस राम ने भूमि पर राक्षसराज रावण को समाप्त करने के लिये जन्म लिया था, वह उसकी प्रतियोगिता में पड़ कर खुद एक प्रतिरावण मात्र बनकर रह गया।

मान-मर्दन

एक एक मंगल सिंह एक परीक्षार्थी की कापी हाथ में लिए परीक्षा-संचालन कक्ष में घुसे और थोड़े आवेश पूर्ण स्वर में बोले—"लीजिये इन्हें रिपोर्ट कीजिये, इन्होंने उड़न दस्ते के साथ मिसबिहेव किया है।" मैंने सीटिंग प्लान बनाते हुए लड़के की तरफ नजर उठायी। एक छह फुट लम्बा तराशे शरीर का गोरा व्यक्तित्ववान नौजवान सामने खड़ा था। प्राचार्यजी की ओर उन्मुख वह कह रहा था—"देखिये साहब, अगर मेरे पास नकल के लिए कोई सामग्री पायी जाये तो आप मुझे एक साल के लिए नहीं, दस साल के लिए रैस्टीकेट कर दीजिये, आपको तलाशी लेना है, मैं अपना पेट खोल देता हूं, पर इस तरह से चड्डी में हाथ डालना मुझे गवारा नहीं है।"

इससे पहले कि प्राचार्य कुछ कहें, उड़न दस्ते के दूसरे सदस्य इन्द्रजीत सिंह ने संचालन कक्ष में प्रवेश किया और नकली डाँट के से स्वर में कहा—अच्छा, अच्छा, जाओ इम्तहान दो, आइंदा ऐसा नहीं करना और प्राचार्य के हाथ से कापी लेकर उसे लौटा दी। वह कमरे से बाहर निकल गया। इन्द्रजीत सिंह और मंगल सिंह भी फिर शेष कमरों की आम तलाशी के अपने काम पर लौट गये। तभी संचालन कक्ष में बैठे हुए दो तीन अध्यापक एक साथ बोले, "वाह साहब, यह कौन-सी बात है, मिस बिहेव करने वाले लड़के को इस तरह छोड़ दिया जायेगा, तो अनुशासन ही क्या रह जायेगा? तर हो गये इम्तहान।" प्राचार्य डॉ० चतुर्वेदी ने असहाय-सी नजरों से उनकी ओर देखा। तभी प्रो० सिन्हा तुनककर बोले—"रिपोर्ट कीजिये साहब, इसे।"

डॉ० चतुर्वेदी कमरे से बाहर निकले और उस लड़के को साथ लिए लौटे। पीछे-पीछे वह लड़का था। साथ में मगन सिंह तथा दो एक और अध्यापक। मगन सिंह ने कहा—"तुमने जो कुछ किया है, उसकी माफी मांगो।"

"पर मैंने किया क्या है, जो माफी मांगूं? मैंने यही तो कहा है कि मेरे कपड़ों में इस तरह हाथ मत डालिये। आप तलाशी लेना चाहते हैं तो खुद पैंट उतार देता हूं।"

"तुमने जिस तरह के अपशब्द कहे हैं, उनके लिए माफी मांगो नहीं तो मिसबिहेवियर के चार्ज में तीन साल के लिए जाओगे।" वे ऐसा कहते हुए बाहर चले गये।

मगन सिंह का इस परीक्षा केन्द्र पर सभी सम्मान करते हैं। वह हैं भी सम्मान करने लायक। एकदम ईमानदार और गुर्दे के धनी। यह उन्हीं की हिम्मत है कि इस कालेज में पिछले कई सालों से नकल नहीं हो पा रही है। सब जानते हैं कि विश्वविद्यालय के सबसे बड़े मुख्यालय स्थित कालेज में वी० सी० की नाक के नीचे सामूहिक नकल धड़ल्ले से चलती है, पर नेहरू कालेज में यह कम ही होता है कि कोई नकल करे और पकड़ा न जाये। अभी सात ही दिन पहले मगन सिंह ने इतिहास बनाया था। पहली बार कोई इसी वर्ष छात्रसंघ का अध्यक्ष चुना जाने वाला विद्यार्थी नकल में पकड़ा गया था। लहीम-शहीम व्यक्तित्व सम्पन्न, सशक्त और प्रभावशाली परिवार, लड़कों का लोकप्रिय नेता। जब मगन सिंह ने उसके कुर्ते की जेब से पूरा गैस पेपर निकाल लिया तो इतना ही बोला—साहब साल भर में बनी सारी इज्जत चौपट हो जायेगी। मगन सिंह ने जवाब दिया—बेटा तुम्हारी तो साल भर की है मैंने तुम्हें छोड़ दिया तो मैंने सोलह साल में जो भी इज्जत कमाई है, सारी मिट्टी में मिल जायेगी। और मगन सिंह ने उसे रिपोर्ट किया। ऐसे सिद्धान्तनिष्ठ और गुर्देदार आदमी हैं मगन सिंह। सब जानते हैं कि उड़न दस्ते के इस एक ही सदस्य के कारण यहां नकल नहीं हो पाती। बाकी लोग तो नकल पकड़ने और छोड़ने में भी राजनीति करते हैं, या फिर मौका पड़ जाने पर आंख मूंदने का नाटक करके अपनी जान बचाते हैं।

मगल सिंह आये। लोगों ने कहा — लीजिये साहब लड़का मानो बक रहा है, इसे परीक्षा के लिए इसके कमरे से उठा दीजिये। पर मगल सिं को बारी थी। बोले "इसने कमरे के सब परीक्षार्थियों के सामने निर्विरोध किया है। यहीं, सबके सामने, माफी मांगे।"

लड़का फिर अकड़ गया—"आप बिना बात के मुझे जलील करना चाहते हैं। आखिर मैंने किया क्या? आप लोग बदतमीजी करें तो कुछ नहीं, मैं कुछ कह भी दूँ तो यह मिस बिहेवियर।"

कई अध्यापक एक साथ उस पर चढ़ बैठे—"अच्छा हम बदतमीज हैं? ऐसे ही बोलते हैं बड़ों से?"

मुझे यह सब बड़ा उलझन-भरा लग रहा था। मैं मानसिकतः लड़के के विरुद्ध होना चाहता था, पर हो नहीं पा रहा था। मैं उठकर परीक्षा भवन में गया। उस लड़के के कमरे के पास वाले कमरे के बाहर खड़े दो बीक्षक अध्यापकों से पूछा—आखिर इस लड़के ने मगल सिंह को कुछ कहा क्या? वे बोले—जम के गालियाँ दीं और क्या? इसे रेस्टीकेट न किया गया तो परीक्षाएँ हो चुकीं। मुझे थोड़ी शान्ति मिली। ऐसे बदतमीज लड़के

के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होनी चाहिए मुझे, मैंने अपने आपसे कहा। मामला सिर्फ मानवीय गरिमा-बोध का ही नहीं है।

मैं दाखा परीक्षा संचालन कक्ष में लौटा तो वह लड़का आँखों में आँसू भरे कह रहा था—मैं सबके सामने बिना कसूर के माफी नहीं माँगूगा। कर दीजिये आप मिसबिहेवियर की रिपोर्ट।

प्राचार्य डॉ० चतुर्वेदी ने शिक्षकों के सामूहिक समर्थन की दृश्यमान शक्ति से भरी हुई उनके लिए, साधारणतया आकस्मिक दृढ़ता से कहा—"या तो तुम रूम में सब लड़कों और अध्यापकों के सामने माफी माँगोगे। या तीन साल के लिए जाओगे। लड़के ने एक क्षण सोचा। विवशता और पराजय की काली छाया ने उसके चेहरे की चमक पर कलौंछ फेर दी थी। वह तैयार हो गया। मंगल सिंह ने इन्द्रजीत सिंह तथा अन्य अध्यापकों से कहा चलिये साहब, चलिये ग्यारह नम्बर के कमरे में चलिये। प्राचार्यजी को भी उठाया और सब लोग विजयोल्लास में भरे हुए इस प्रकार उनके साथ चल दिये, जैसे कोई समारोह मनाने जा रहे हों। मैं चुपचाप नीची निगाहें किये अपने काम में व्यस्त दिखाई देने लगा ताकि कोई मुझे न बुलाये। आखिर चिनरजरी पीढ़ी के सब प्रौढ़ों और बूढ़ों ने मिलकर एक स्वाभिमानी नौजवान का मान-मर्दन कर दिया था।

कोई आधे घण्टे बाद जब उड़न दस्ता चाय नाश्ता कर चुका, प्राचार्य जी ने मंगल सिंह से पूछा : उस समय रणविजय सिंह वह क्या रहा था? मैंने उनके प्रश्न में अपना पूरक प्रश्न जोड़ा—"क्या उसने आपको गाली-वाली दी थी?"

"नहीं, मुझसे तो कुछ नहीं बोला। उसकी तलाशी तो इन्द्रजीत सिंह ले रहे थे। उनको भी गाली तो कोई नहीं दी पर बोला—तलाशी लेना है तो सज्जनता से लीजिये—चड्डी में हाथ मत डालिये।"

मैंने डॉ० चतुर्वेदी की आँखों पर अपनी आँखें टिका दीं—जैसे कह रहा होऊँ—देखा! बात कितनी साधारण-सी निकली, और सब लोग उसके साथ ऐसा व्यवहार कर रहे थे जैसे उसने माँ-बहिन की गालियाँ दे दी हों। पर वे एक निर्लज्ज संवेदन-हीनता से मुस्कुराये और बोले, "अगर मैंने

स्पष्ट समझ तो न रही होगी कि विश्वविद्यालय की रिपोर्ट में तीन साल के लिए रेस्टीकेट कर दिये जाओगे तो कभी माफी न मांगता।"

उन लोगों के जाने के बाद प्रोफेसर सिन्हा ने जो तीन-चार बार आई० ए० एस० और पी० सी० एस० में घुसने की कोशिश कर चुके थे, और एक बार शिक्षक संघ के मंत्री भी रह चुके थे, दरोगाजी की ओर उन्मुख होते हुए कहा "नयी पीढ़ी कितनी अकड़ है। अरे यह नहीं सोचते कि बड़ों-बड़ों को जलील होना पड़ता है। कल नौकरी करोगे, कोई सरकारी अफसर बनोगे तो ऊपर वालों की गालियाँ भी पीनी पड़ेंगी और बिना बात माफी भी मांगनी पड़ेगी। सारी अकड़ धरी रह जायेगी।"

ऐसा कहते हुए उनके चेहरे पर वैसी ही हिकारत उभर आयी थी, जैसी उस पालतू पशु के चेहरे पर उभरती है, जिसका सामना अपनी ही प्रजाति के किसी जंगली पशु से पड़ गया हो।

मई '८६

तीसरी प्रिया

. 1

श्रीमती सक्सेना के पास उनकी एक छात्रा एक चिट लेकर आयी, जिस पर लिखा था कि मेरठ कालेज की एक भूतपूर्व छात्रा, शिप्रा, उनसे और सक्सेना साहब से मिलना चाहती है। प्रिंसिपल सक्सेना यहाँ आने से पहले मेरठ कालेज में पढ़ा चुके थे। चिट ज्यों ही श्रीमती सक्सेना ने उनके हाथ में दी—वे शिप्रा का चेहरा याद करने लगे। सोलह-सत्रह साल की एक हँसमुख-सी लड़की का सुन्दर-सा चेहरा उनकी स्मृति में आया जो ऊँची चोटी, पोनी टेल, बाँधा करती थी और उन्हें अंकल तथा उनकी भूतपूर्व पत्नी को आंटी कहकर पुकारती थी। वे बोले, ठीक है, कह दो कल शाम को हम लोग उनके घर आयेंगे। शिप्रा से व उसके पति मिश्राजी से मिलकर हमें खुशी होगी।

मेरठ कालेज से यहाँ आने के बाद प्राचार्य सक्सेना के अपनी पूर्व पत्नी से लम्बे झगड़े चले, जिसका परिणाम दोनों के विच्छेद में निकला। यहीं उन्होंने अपनी एक रिसर्च स्कालर से प्रेम-विवाह किया और उसे भी यहीं के वीमेन्स कालेज में लेक्चरर लगवा दिया। वे अपनी पत्नी प्रिया सुमा को बहुत चाहते थे। दो बच्चे थे; एक लड़का एक लड़की। एक भरा-पूरा सुखी और सन्तुष्ट गृहस्थ जीवन था, दोनों का। सक्सेना दूध के जले थे, छाछ की शीतलता का पूरा स्वाद लेते हुए उसे पी रहे थे और सुमा सक्सेना स्वभाव से ही स्नेहशील और सेवाभावी। अपने भूतपूर्व गुरु और वर्तमान प्रेमी-पति का पूरा सम्मान रखती थी।

शिप्रा के पति असिस्टेन्ट इंजीनियर थे। दो साल से वे लोग इसी

शहर में रह रहे थे, पर प्रो० सक्सेना से सम्पर्क नहीं हुआ। आखिर उन लोगों ने अपनी एक पड़ोसिन छात्रा के माध्यम से सक्सेना दम्पति को खोज निकाला था। सक्सेना परिवार में मिश्राजी की नेमप्लेट देखी, और गेट खोलकर बरामदे तक आये। घंटी बजाते ही एक चौड़े चेहरे और बड़ी-बड़ी आँखों वाली, अधिक मोटी नहीं, युवती सामने आयी। सक्सेना साहब तपाक से आगे बढ़े और उन्होंने शिप्रा के दोनों गालों को अपनी दोनों हथेलियों से दबा लिया। "वाह, कितने साल बाद तुम्हें देखा है।" "पूरे सोलह साल बाद" वह मुस्कराई। तब उसका ध्यान श्रीमती सक्सेना की ओर गया। सक्सेना साहब ने परिचय करवाया, यह मेरी पत्नी हैं—शुभा। फिर बातें होने लगीं। कालेज के दिनों की बातें। शिप्रा सक्सेना की सीधी छात्रा नहीं थी। पर पड़ोस में रहती थी, आती-जाती थी। उनकी पत्नी से उसकी काफी दोस्ती थी। पुराने दिनों की बातें करते-करते उसकी आँखों में एक ऐसा निकटता का, अपनेपन का भाव उभरता कि सक्सेना का मन करता उसे स्नेह से थपथपा दें। वह अपने एकमात्र लड़के के कष्टप्रद प्रसव और डाक्टरों की लापरवाही की कहानी सुनाती रही। थोड़ी देर में मि० मिश्रा भी आ गये। सक्सेना परिवार से मिलकर बड़ी खुशी जताई उन्होंने। तय हुआ कि दो दिन बाद मिश्रा दम्पति सक्सेना जी के घर आयेंगे। पर वे आ नहीं सके। अकेली शिप्रा आयी। मिश्राजी की तबियत खराब हो गयी थी। जब तक शुभा उसके लिए चाय-नाश्ते की तैयारी करती रही, वह सक्सेना साहब से बतियाती रही। सक्सेना साहब ने मार्क किया: महिला काफी खुले स्वभाव की और निस्संकोच है।

चार-पाँच दिन बाद प्रो० सक्सेना एक मित्र के यहाँ से लौटते हुए, शिप्रा के घर पर रुके। वे जानते थे इस समय शिप्रा अकेली होगी। शिप्रा ने उन्हें देखते ही उत्साह में बैडरूम का दरवाजा खोला और उन्हें डबल बेड पर बिठाया और फिर मेरठ कालेज के दिनों की बातें शुरू हो गयीं। शिप्रा ने सक्सेना साहब से उनकी पूर्व पत्नी से झगड़े और तलाक का कारण पूछा। उन्होंने उसके आलसी, कर्कश और शक्की स्वभाव की चर्चा की और तुलना में अपनी दूसरी पत्नी शुभा के स्नेहपूर्ण, पूरा विश्वास

रखने वाले, सेवाभावी स्वभाव की भी। पूर्व पत्नी के बारे में उन्होंने यह भी कहा सेक्समुअली भी वह बिल्कुल ठंडी थी। घटो सहलाते रहो, कोई असर ही नहीं। इस पर शिप्रा ने फिर वही निकटतापूर्ण मुस्कान बिखेरी—"शुभाजी तो आपको खूब सन्तुष्ट करती हैं?"

"भरपूर"—वे बोले। "सौ में से पच्चानवे बार हम लोग साथ-साथ ही सुख के शिखरों पर चढ़ते हैं। वह तो कहती है, आपसे प्रेम न हुआ होता तो शायद मैं जान ही न पाती कि चरम सुख होता क्या है।" सकोच से उनके गाल लाल पड़ गये। कुछ क्षण शिप्रा विजडित-सी दिखाई दी, फिर उसने एक गहरी ठंडी साँस ली।

गला साफ करते हुए प्रो० सक्सेना बोले "और तुम? तुम्हारा दाम्पत्य जीवन कैसा चल रहा है? मिश्राजी तुम्हें खूब चाहते हैं ना?"

"हाँ, चाहते तो खूब हैं," वह बोली, "विश्वास भी बहुत करते हैं, नहीं तो टी० वी० पर प्रोग्राम करने देते, जहाँ से कई बार मैं रात के बारह बजे लौटती थी। पर बिचारे बीमार रहते हैं।" स्वर धीमा करते हुए उसने कहा।

"क्या बीमारी है?" थोड़ी आशंका से भरे हुए स्वर में सक्सेना ने पूछा? "कई हैं" अब उसका स्वर लापरवाह था। "पेट लगातार खराब रहता है। जब कभी बढ़िया खाना खा लेते हैं, छुट्टी लेनी पड़ जाती है। एलर्जी अलग है। कभी-कभी तो पूरा शरीर फोड़ों से भर उठता है—हर समय खुजलाते रहते हैं। फिर दो-तीन साल से यूरिनरी ट्रेक में इन्फैक्शन हो गया है। पेशाब करते समय बहुत दर्द होता है।"

दो-तीन क्षण चुप्पी छायी रही। तभी कमरे में कॉफी की वाल्टी लिए हुए लड़की—नौकरानी ने प्रवेश किया। सक्सेना बोले: "उस दिन इतने बरसों बाद तुम्हें देखकर बड़ा अच्छा लगा। बैसे सहज आवेग में मैंने तुम्हारे गाल दबा दिये थे।" "हाँ मेरा भी मन किया, दौड़कर आपसे लिपट जाऊँ, पर साथ में आपकी पत्नी को देखकर ठिठक गयी।" एक क्षण रुककर शिप्रा ने कहा: "इतने साल बाद आपको देखा पर आप बदले बिल्कुल नहीं। वैसे ही दुबले-पतले और स्मार्ट हैं।"

"कहाँ?" प्रिंसिपल साहब शरमाए से बोले। "आधा बूढ़ा हो गया हूँ और तुम कहती हो बदले बिल्कुल नहीं।"

'कहाँ ?" शिप्रा ने उनकी ओर एक अपनत्व भरी-सी नजर से देख हुए कहा—"आपके बाल तो अभी बहुत ही कम सफेद हुए है। आपने त ये ही ज्यादा बूढ़े दिखते हैं।"

प्रिंसिपल सक्सेना को लगा कि जैसे बत्तीस साल की इस महिला ने अपनी एक ही नजर से उनके जीवन से सोलह साल कम कर दिये हैं और वे खुद भी उसी के हमउम्र हो गये है। सोलह साल पहले के एक अल्हड़ दिल फेंक नौजवान।

उन्होंने स्नेह से उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। वह एकदम ठंडा था। "तुम्हारा हाथ इतना ठंडा क्यों है ?"—उन्होंने पूछा। "ऐसी बातें करते समय मुझे ऐसा ही हो जाता है।" वह धीमे स्वर से बोली। "मेरा हाथ देखिये न, आप तो इस कला मे माहिर थे।" वे मुस्कराये "वह सब तो कब से छूट गया। हाँ, तुम्हारी भाग्य रेखा तो जोरदार है, जरूर तुम्हें चमकाएगी।" एक महत्वाकांक्षा उसकी आँखों मे कौंधी, "मिश्राजी भी चाहते हैं कि मैं एक बड़ी आर्टिस्ट बनूँ। मेरी पेंटिंग्स की प्रदर्शिनी लगी थी तो फूले नहीं समाये थे।" तभी सक्सेना साहब ने उसके हाथ को थोड़ा-सा मोड़ा और छोटी अंगुली की जड़ में आड़ी खिंची हुई रेखाओं पर ध्यान दिया, "अरे तुम्हारे हाथ मे तो दो प्रणय रेखाएँ हैं ? क्या अपने पति के अतिरिक्त भी तुमने किसी से प्यार किया है ?" उनकी आवाज भर्रायी हुई थी।

"नहीं, अभी तक तो नहीं किया," वह बोली। "सोलह साल की थी तो शादी हो गयी। एक साल बाद ही बच्चा और वह भी इतने कष्ट के साथ। तब से लगातार संयुक्त परिवार मे रही। ऐसा मौका ही कहाँ आया। बस यहीं पहली बार हम लोग अकेले रह रहे हैं। मेरी छोटी बहिन ने तो एक पंजाबी लड़के से न केवल प्यार किया, शादी भी कर ली। पर हम तो छुटपन में ही ब्याह दिये गये थे।" उसके स्वर में साफ प्यार न कर पाने का अफसोस झलक रहा था। यह तो हद थी। सक्सेना साहब से अब न रहा गया। अपने काँपते स्वर को दृढ़ करने की कोशिश करते हुए वे बोले: "किसी न किसी दूसरे व्यक्ति से प्यार तो तुम्हारे हाथ में लिखा ही है। अब तक नहीं कर सकीं हो तो अब कर लो।"

उन्होंने उसका हाथ दबाते हुए उसकी आँखों में झाँका। वही निर्दोष सरोवर में उठती हुई लहरों की मस्ती थी। उन्होंने उसका चेहरा अपने दोनों हाथों में पकड़ा और ताबड़तोड़ दस पन्द्रह चुम्बन उसकी आँखों, माथे, गालों और ओठों पर जड़ दिए।

"कितनी प्यारी हो तुम।"

"आप बड़े वो है।"

वह मुस्कराती हुई उठी और लगे हुए स्टोर रूम में बिछी हुई एक खाट के पास, दरवाजे की थोड़ी-सी आड़ लेती हुई खड़ी हो गयी। सक्सेना ने एक नजर अहाते के पार, गेट से बाहर तक डाली और आश्वस्त होकर कि कोई आ नहीं रहा है, उसके पास जा खड़े हुए। उन्होंने उसे बाँहों में भरा और उसके शरीर को अपने शरीर से सटाते हुए सीधे आलिंगनबद्ध कर फर्श से ऊपर उठा लिया। ओठों पर एक लम्बा चुम्बन लिया और दोनों हाथों से नितम्ब दबाये। तब पास पड़ी खाट पर बिठाकर गोद में लिटाया और फिर चूमा। "छोड़िये", तभी वह बोली, "कोई आ जायेगा।" और वे वापस बैडरूम में आ गये।

सचमुच ही एक आदमी ने गेट खोला। वहीं से उसे देखते हुए शिप्रा ने उद्‌घोषिका के स्वर में कहा। "पहले मकान में पड़ौसी था, देर तक बैठेगा।" जब वह गेट बंद करके बरामदे तक आया, सक्सेना ने सोचा जरूर शिप्रा जाकर बैठक का दरवाजा खोलेगी, वहीं उसे बिठायेगी और शायद मुझे भी वहीं ले जायेगी। पर नहीं। शिप्रा ने उसी निश्चित भाव से उसे भी बैडरूम में लिया और उसी बैड पर बिठा दिया। वह प्राचार्य सक्सेना से भी ज्यादा बेतकल्लुफी से बैड पर टाँगें फैलाकर, दीवार से अपनी पीठ टिकाये बैठ गया। शिप्रा ने परिचय करवाया, और वह आश्वस्तिपूर्ण लापरवाही से शिप्रा से बासमती चावल की चर्चा करने लगा, जो शायद शिप्रा उसके माध्यम से खरीदना चाहती थी। सक्सेना साहब अन्यमनस्क हो उठे और बोले, "अच्छा शिप्रा अब मैं चलता हूँ। आज मुझे बाहर जाना है। अब दस-पन्द्रह दिन बाद भेंट होगी। तभी बीमेन्स कालेज के मैनेजर से भी तुम्हारे बारे में बात करूँगा।"

"अच्छा। लौटने पर आइयेगा, जरूर।"

कालेज में। कहने लगी, आपसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं, आप मेरे साथ मेरे घर चलें। तो उसके साथ चली गयी थी।"

"क्या जरूरी बातें कीं उसने ?"

"अभी बताती हूँ, जरा कपड़े उतार लूँ।" उसने साड़ी ब्लाउज उतारा, मैक्सी पहनी, एक गिलास पानी लेकर पिया और पास आकर बैठ गयी। सक्सेना का हाथ अपने हाथ में लिया और बोली, "कल ग्यारह बजे आप उसके यहाँ गये थे प्राण जी !"

"हाँ गया था" उन्होंने अचकचाकर कहा।

"और आज ग्यारह बजे उसे यहाँ आने के लिए कह आये थे।" अब उनका मुँह सूखा। "क्यों वह ऐसा कह रही थी क्या ?"

"हाँ। कह रही थी। कल वे ऐसे समय मेरे घर आये, जब मैं अकेली थी। उन्होंने आते ही मुझे बाहों में भर लिया, चूमा। मैंने मना किया तो माने नहीं। जबरदस्ती करने लगे। तभी अशोक आ गया। मैंने बहाना किया कि किसी जरूरी काम के लिए मुझे और अशोक को मिश्राजी के आफिस जाना है। मैं ताला लेकर खड़ी हो गयी, तब वे गये।"

"ऐसा कह रही थी ?"

"हाँ। और यह भी कि वे मेरे पिता के बराबर हैं। उन्हें सोचना चाहिए। मुझे अपनी तीसरी प्रिया कहते हुए उन्हें शर्म नहीं आयी। जब घर से निकले तो कहने लगे—कल ग्यारह बजे मेरे घर जरूर आना। तुम्हारे घर में तो सुरक्षित ढंग से मिला भी नहीं जा सकता। उस समय शुभा ड्यूटी पर रहेगी, बच्चे स्कूल में। मैं रात-भर चिन्ता के मारे सो नहीं सकी। मिश्राजी को बताया तो उन्होंने कहा कि उनकी पत्नी से जाकर कह दो। आप मेरी बड़ी बहिन के समान हैं। कृपया उन्हें समझा दीजिए। अकेले मेरे घर न आया करें। जब भी आयें, आपके साथ आयें।"

"अच्छा ! अब इतनी सती-सावित्री बन रही है। आखिर क्यों ? कल तक सब होने दिया, जरा भी अनिच्छा न दिखाई और आज एकदम पासा उलट दिया।" उसकी यह सारी बकवास सुनकर तुमने क्या कहा ?"

"मैं क्या कहती। मैं तो सकते में आ गयी। सोचा, आपको क्या सूझी जो उसके साथ जबरदस्ती प्रेम संबंध स्थापित करने की कोशिश की।

पर हाँ कभी जरूरत पड़े तो जरूर बना सकता हूँ और वह उसका बुरा भी नहीं मानेगी।"

"क्यों नहीं मानूँगी बुरा ? आपने यही सोचकर तो इतने आराम से उसकी ओर हाथ बढ़ा लिया। यह भी नहीं सोचा कि कैसी धूर्त लगती है। बिल्कुल छिनाल। अपने घर थोड़ी-सी आपत्ति आयी, तो झट इस पर आरोप लगा दिया। वह साली क्या जाने कि प्यार क्या होता है। जो जो प्यार करते हैं, वे अपनी जान जोखिम में डालकर भी दूसरों की इज्जत बचाते हैं कि इसकी तरह एक ही धमकी में फुस्स हो जाते हैं।"

"सचमुच अब तो मुझे लग रहा है, जब मैं उसे चूम चाट रहा था, उसका पति आ जाता, तो शायद चिल्लाने लगती कि उसके साथ बलात्कार हो रहा है।"

"हाँ, कर सकती थी, बिल्कुल कर सकती थी, वह ऐसी नौटंकी। मुझे तो अब गम यह हो रहा है कि मैंने कैसे उसकी बातों पर विश्वास कर लिया, क्यों उसे कह दिया कि अब ऐसा नहीं होगा। मैंने तो आपको उसकी नजरों में भी कुसूरवार बना दिया। मुझे आपने पहले बता दिया होता तो उसे खरे-खरे जवाब तो देती। उसे यह तो कहती कि यदि तू उनके साथ कुछ नहीं करना चाहती थी तो उनके भीतर घुसते ही दरवाजा क्यों बंद कर लिया ? ब्लाउज से अपना स्तन निकालने में उनकी मदद क्यों की ?"

"ऐसा करो शुभा, कि कल उसके पति के ऑफिस जाने के बाद फिर तुम उसके घर जाओ। और उसे बताओ कि मैंने उसके बारे में तुम्हें क्या-क्या बताया है। और साली को जलील करो। तुम्हारी नजरों में एक भली ... जिसने हमारे दाम्पत्य जीवन को नष्ट होने से

नहीं बताता, नहीं बताता पर जब बताता हूँ तो पूरी बता देता हूँ, कुछ भी नहीं छिपाता।"

"हाँ यह तो है ही, पर अपना भाग्य सराहो कि जल्दी उस त्रिया-चरित्र वाली औरत के चंगुल से छूटे। नहीं तो वह आपको बहुत ब्लैक-मेल करती। कभी भी आपको विकट संकट में डाल देती। सारी इज्जत आबरू मिट्टी में मिल जाती।"

"हाँ यह तो है।" पर तुम हो कितनी अच्छी मेरी प्राण! अब भी मेरी इज्जत-आबरू के बारे में ही सोच रही हो," सक्सेना ने उसके ओठों पर एक गहरा चुम्बन अंकित करते हुए कहा।

3

"आइये, आइये" शुभा को देखते ही उत्साह से शिप्रा ने स्वागत किया। "कपड़े धो रही थी, बैठिए, मैं हाथ धोकर आयी।"

शुभा पलंग पर बैठ गयी। शिप्रा सामने के सोफे पर आकर बैठी। "सुनाइये, क्या प्रतिक्रिया रही सिन्सियर साहब की? मैं तो जानती थी, वे सारी बात से एकदम इन्कार कर जाएँगे; कहेंगे, शिप्रा झूठ बोलती है, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।"

"नहीं," शुभा ने दृढ़ता से कहा, "सक्सेना साहब मुझसे झूठ नहीं बोलते। उन्होंने तुम्हारी बताई हुई एक-एक बात स्वीकार की और उसके अलावा वे सब बातें भी अभी [illegible] बता दीं जो तुमने उनसे कही थीं और तुम मुझसे छुपा गयी थीं। अब मेरे सामने तस्वीर के दोनों पहलू पूरी तरह से साफ हैं। देखो, उस दिन तुमने जो कुछ भी कहा, मैंने धैर्य से सुना। अब मैं जो कुछ तुम्हें कहूँ, धैर्य से सुनो। तुमने मुझे बड़ी बहन कहा है तो मैं भी जो तुम्हें कहूँगी तुम्हारे भले के लिए ही कहूँगी।"

शिप्रा का चेहरा एकदम फक पड़ गया, "क्या कहा उन्होंने मेरे लिये।" "बताती हूँ। पहले मेरे लिये एक गिलास पानी लाओ।" शुभा ने सहज-पूर्वक कहा। पानी पीकर उसने बोलना शुरू किया।

"तुमने जब मुझे सारी बात इस तरह बताई, जैसे [illegible] के कहने पर यहाँ आयीं और उन्होंने एकाएक तुम्हें चूम लिया। मुझे उसका [illegible]

एक उसके ब्लाउज मे से स्तन निकाल लेगा और उसे इतमीनान से चूम लेगा ?"

"तो आप समझ रही हैं, मैंने प्रपोज किया था ? हे भगवान आप समझती क्यों नही, कि उसने मेरे साथ जबरदस्ती की।"

"अगर तुम यह सब नही चाहती थी तो तुमने उनके आने के बाद गैलरी का दरवाजा बद क्यो किया ? ऐसी स्थिति में तो प्रत्येक पुरुष यही समझेगा कि तुम चाहती हो तुम्हारे साथ ऐसा हो। फिर बैठक मे जब तुम उनके पास बैठी, उन्होंने तुम्हारा स्तन निकाला, तुमने निकालने मे मदद की और उन्होने उसे चूमा। अगर यह सब जबरदस्ती तुम्हारे साथ हो रही थी तो तुम चिल्लाई क्यो नहीं, बाहर क्यो नही चली गयी, उन्हें धकेल क्यों नहीं दिया ?" सुमा ने किंचित आवेश में कहा।

"आप आदमी और औरत की ताकत का अन्तर क्यो नही समझती ? औरत ऐसे मे कर ही क्या सकती है। फिर भी मैंने उन्हें साफ कह दिया कि आप यहाँ से चले जाइये।"

"बिल्कुल गलत। कल तुमने खुद मुझे यही कहा था—कि उनको पिता तुल्य मानने के कारण सकोचवश तुम कुछ नही कर सकी। केवल अचकचा गयी। और यह तो तुमने बताया ही नही था कि दस तारीख को उनके कहने पर तुम स्टोर में जाकर खडी हुई और उन्होंने तुम्हे वहाँ प्यार किया।"

"हाय राम, यह आदमी कितना झूठा है। इससे ऊँची-ऊँची पोजीशन के तीन सौ साठ आदमी मेरे आस-पास मँडराते हैं और मैं उन्हें लिफ्ट नही देती। अपने आप को समझता क्या है, वह !"

"बकवास बन्द करो। मुझसे ज्यादा उन्हें कौन जानेगा ? मैंने उनसे तीन साल प्रेम किया, तब शादी की। पर उन तीन मे से दो साल मैंने उन्हें अपना शरीर छूने नही दिया। और उन्होंने कभी जबरदस्ती की कोशिश नहीं की। वे भावना मे बह सकते हैं। तुमसे प्यार कर सकते हैं। पर किसी अनिच्छुक से जबरदस्ती नहीं कर सकते। यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

"तो आप कहना चाहती हैं, मैंने प्रपोज किया ? इतने कुलीन परिवार

की एक विवाहिता महिला ने ? दस साल के बच्चे की एक मां ने! भी अपने पिता की उम्र के आदमी से ?

इसमें कुलीन और विवाहिता होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। न ... का। यह सिर्फ भावना का सवाल है। मैं नहीं कहती कि तुमने ... किया। पर तुमने उनके प्रयोजन का विरोध नहीं किया। अपने आ... का कारण पूछा। अपने पति की बेचारगी की चर्चा की! उनके तुम्हें ... तीसरी प्रिया घोषित करने पर मुस्कुराती रहीं और सबसे अधिक ... उनके आने पर किवाड़ भीतर से बद कर लिया। ऐसी परिस्थिति में ... भी पुरुष होता, जब तक कि वह एकदम नपुंसक ही न होता, वही कर... जो उन्होंने किया। यह पुरुष का स्वभाव है। यह बात तुम नहीं समझो... तो बार-बार ऐसी ही उलझनों में पड़ोगी। मैं तुम्हें एक बड़ी बहिन की तर... समझा रही हूँ। अपने व्यवहार का विश्लेषण करो।"

वह चुप रही।

"अच्छा मेरे लिए एक गिलास पानी लाओ।"

वह ले आयी। पानी पीकर शुभा ने फिर कहा। "जो बात मेरी बिल्कुल समझ में नहीं आती, वह यह है कि मान ले दस तारीख की मिल-लन के बाद तुमने सोचा हो कि यह गलत है, नहीं होना चाहिए। तो परसों उनके आते ही तुमने उनको क्यों नहीं कह दिया कि यह नहीं चलेगा। क्यों दरवाजा खोलकर उन्हें अन्दर ले गयी? और सबसे बड़ी बात क्यों दरवाजा भीतर से बन्द किया? फिर चलो, जो हुआ, जब उन्होंने कल तुम्हें अपने घर बुलाया तो तुमने केवल न पहुंचना ही काफी क्यों नहीं समझा। क्यों अपने पति से छीछालेदर की? क्यों मुझसे शिकायत की? अगर तुम उनसे थोड़ा भी स्नेह रखती थी, तो क्यों उन्होंने धोखा दिया? और अगर तुम मेरी हितैषी बन रही थी, तो कल ही क्यों मुझे यह सब बताया, पन्द्रह तारीख को जब मेरे घर आयी थी, तब क्यों नहीं बता दिया? ये तो ... मुझे कह रहे थे कि एक दिन तुम्हारे कॉलेज के प्रबंधक के ... कि कालेज में चित्रकला का विषय खोलें, कोशिश ... से लिया जाय।"

कर उसने कहानी उलट दी। अपने को निर्दोष और वफादार साबित करने के लिए।"

"यह सही हो सकता है पर मैं जहाँ तक समझता हूँ, एक तो वह सच मुच किसी अन्य पुरुष से यौन-सम्बन्धों की आकांक्षी है। पर साथ ही व मिश्राजी पर अपनी वफादारी की धौंस नहीं जमाना चाहती, यह भी उन्‍ रिमाइंड कराते रहना चाहती है कि वह सुन्दर और आकर्षक है, और कि उस पर अनेक लोग मरते हैं। यानी उसकी वफादारी अतिरिक्त रूप से मूल्यवान है।"

"मुझे उसकी कायरता पर उतना आश्चर्य नहीं होता, जितना उसके झूठी और फरेबी होने पर। उसकी शारीरिक आवश्यकता के प्रति मेरी सहानुभूति हो सकती थी अगर वह इतनी नौटंकीबाज न होती। हार्ट फेल होने का ऐसा नाटक किया उसने और इस तरह दस तारीख वाली घटना से एकमात्र बेटे की कसम खाकर इन्कार किया कि इस पक्ष में आप न होते तो मुझे विश्वास ही न होता कि वह झूठी कसम खा रही है।"

"इससे संपर्क न होता तो मैं कभी जान ही न पाता कि कोई औरत इतनी फरेबी और कपटी भी हो सकती है।"

थोड़ी देर चुप्पी छायी रही। तभी सक्सेना साहब ने शुभा के उरोज सहलाना शुरू किया। "इतना अनाकर्षण था उसका स्तन कि देखने के बाद मेरा तो मूड ही उखड़ गया—मटमैला और ढीला-ढाला।"

"अब क्यों बात बना रहे हैं ?"

हो एक भयकर खाई के कगार पर से बचकर निकल आये। बचकर निकलने की धुकधुकी को और संतोष।"

प्रिन्सिपल सक्सेना ने उसे चूमकर कहा "जितनी तुम मेरी हो, उतनी तो शायद अपनी भी नहीं हो।"

"अच्छा तो कल मैं यूनिवर्सिटी की मीटिंग मे जाने का प्रोग्राम बना लूं", थोड़ी देर की शान्ति के बाद उन्होने पूछा।

"बना लीजिए" धीमी विलम्बित आवाज मे शुभा बोली। "पर आज तो लग रहा है मेरे भीतर—मेरे अस्तित्व के बीचो-बीच एक शून्य-सा उभर आया है। मन चाहता है उसमे आपको, समूचा रख लूं, उस खालीपन को भर लूं। आपको कहीं जाने न दूं।"

"भर लो मेरी जान, पूरी तरह भर लो, मैं खुद अब कहीं जाना नहीं चाहता।"

अप्रैल, ८६

द्वीप और समुद्र

मैं, अपनी बहिन से मिलने नैनपुर] जा रहा था। कुतुब एक्सप्रेस ने १२ बजे जबलपुर पर उतार दिया। वहाँ मैंने बस पकड़ी जो मुझे शाम ६ बजे के करीब मडला से आयी। उतरकर पूछा नैनपुर के लिए कोई बस है। एक रिक्शेवाले ने बताया बाहर प्राईवेट बस खड़ी है, जल्दी जाइये। दौड़कर बस पर चढा और शांति की सास ली कि चलो अब घटे डेढ घटे मे नैनपुर पहुँच जाऊँगा। बीस घंटों की यात्रा की थकान के कारण बस कडक्टर से टिकिट ले लेने के बाद मैं एक अर्धतंद्रा की सी स्थिति मे खिड़की के शीशे पर सिर टिकाये लेटा था कि बस एक चुगी बैरियर पर रुकी। आँख खोलते ही देखता हूँ कि कंडक्टर एक औरत के पास खड़ा है और उसे कह रहा है : पैसे नही हैं तो उतरो और वह उतर नही रही है। यह जानने के लिए कि मामला क्या है, मैं अपनी सीट से उठकर उसके पास तक गया। कडक्टर से पूछा क्या बात है। वह बोला—पगली है। उतर नही रही। मैंने कडक्टर की तरफ कठोर नजर से देखा और औरत से जो गोद मे एक छोटा-सा बच्चा लिए बैठी थी, पूछा, कहाँ जाना है। वह बोली—सिवनी। मैंने फिर पूछा—क्या किराये के पैसे नही है ? उसने कहा—नही।

सिवनी मे तुम्हारा कौन है ?

कोई नही।

तो वहाँ क्यो जा रही हो ?

वहाँ से सतना गाड़ी जाती है, वही जाना है।

तभी सामने बैठे एक सरदारजी बोले, सतना के लिए गाडी तो

नैनपुर में मिलेगी, सिवनी जाने का क्या तुक है। मैंने कंडक्टर से कहा—यहाँ अंधेरे में इसे मत उतारो, अकेली औरत है। तुम नैनपुर तक का इसका टिकिट बना दो, किराया मैं दे दूँगा। कंडक्टर ने कहा, अच्छा साहब और बस चल पड़ी।

कंडक्टर ने मुझे नैनपुर का एक और टिकिट बनाकर दिया और मैंने उसे किराये के साढ़े छह रुपये दे दिये। सीट पर बैठे हुए मेरा मन बार-बार कर रहा था कि मैं उस जवान-सी ही लगने वाली औरत के पास बैठकर जानूं कि मामला क्या है ? सतना उसे क्यों जाना है और क्यों उसके पास किराया नहीं रहा। पर कहीं आस-पास बैठे हुए यात्री यह न सोचें कि मैं उसका किराया चुकाने का कोई दुरुपयोग करना चाहता हूँ यह सोचकर मुझे सकोच-सा हो रहा था। तभी मैंने देखा कि वह स्त्री दो-एक बार पीछे झाँककर यह देखने की कोशिश कर रही है कि फरवरी की इस लगातार बरसती हुई अंधेरी डरावनी शाम को एक निर्जन चुंगी बैरियर पर उतरने के संकट से उसे बचाने वाला पीछे किस सीट पर बैठा है। एक छोटा स्टेशन आया और उसकी सीट की समानान्तर सीट पर बैठा हुआ आदमी उतर गया। मैंने अपना अटैची-बिस्तर उठाया और उसके पास की उस खाली टू-सीटी पर बैठ गया। उसने मेरी तरफ कुछ कृतज्ञ नजर से देखा तो मैंने उसे कहा—नैनपुर में तुम मेरे साथ ही उतर जाना। वहाँ से गाड़ी में बैठकर सतना चली जाना। उसने सिर हिलाकर हामी-सी भर दी। फिर मेरी तरफ देखा। गाड़ी के चलने की, और बाहर बरसती हुई बरसात की लगातार आवाज में आमने-सामने की टू-सीटी के आर-पार बात करना सहज नहीं था, इसलिए मैंने अपनी सीट पर खिड़की के किनारे सरकते हुए अपनी सीट के उसकी तरफ के खाली हिस्से को छूते हुए उसे इशारे से कहा : यहाँ आ जाओ। उसने इशारा समझ लिया, पर थोड़ी देर अविचलित रही। जब दुबारा उसने मेरी ओर कातर-सी नजरों से देखकर कुछ बोलने की कोशिश की, मैंने फिर अपना इशारा दुहराया और साथ ही सहज आवाज में बोला—यहाँ आ जाओ, यहाँ से कुछ सुनायी नहीं पड़ता। इस बार वह उठी और चलती बस के धक्कों से अपने दुबले-पतले शरीर को साधते हुए मेरे पास आकर बैठ

द्वीप और समुद्र

मैं, अपनी बहिन से मिलने नैनपुर जा रहा था। कुतुब एक्सप्रेस ने १२ बजे जबलपुर पर उतार दिया। वहाँ मैंने बस पकड़ी जो मुझे शाम ६ बजे के करीब मडला ले आयी। उतरकर पूछा नैनपुर के लिए कोई बस है। एक रिक्शेवाले ने बताया बाहर प्राईवेट बस खड़ी है, जल्दी जाइये। दौड़कर बस पर चढ़ा और शांति की सास ली कि चलो अब घंटे डेढ़ घंटे मे नैनपुर पहुँच जाऊँगा। बीस घंटों की यात्रा की थकान के कारण बस कण्डक्टर मे टिकिट ले लेने के बाद मैं एक अर्धतंद्रा की सी स्थिति में खिड़की के शीशे पर सिर टिकाये लेटा था कि बस एक चुंगी बैरियर पर रुकी। आँख खोलते ही देखता हूँ कि कंडक्टर एक औरत के पास

और उसे कह रहा है : पैसे नहीं हैं तो उतरो और यह

है। यह जानने के लिए कि मामला क्या है, मैं

उसके पास तक गया। कंडक्टर से पूछा क्या बात

है। उत्तर नहीं रही। मैंने कंडक्टर की तरफ

औरत से जो गोद मे एक छोटा-सा बच्चा लिए

है। वह बोली—सिवनी। मैंने फिर पूछा

उसने कहा—नहीं।

सिवनी में तुम्हारा कौन है ?

कोई नहीं।

तो वहाँ क्यों जा रही हो ?

वहाँ से मनना गाड़ी जाती है, वहीं

तभी सामने बैठे एक

गयी। पर मुझसे दूरी बनाये रखने की कोशिश में सीट के बिल्कुल किनारे पर, इस तरह कि उसके पाँव सीट के सामने नहीं, दोनों सीटों के बीच के गलियारे में ही बने रहें। मैंने उसे एक बार कहा भी, पाँव सीधे करके आराम से बैठो, घबराओ नहीं। पर वह वैसे ही बैठी रही। मैंने पूछा—कहाँ से आ रही हो। मेरा बच्चा दो लोग ले गये हैं, वह बोली, तुम फोन कर दो, मेरे बच्चे को ढुँढवा दो। मेरे लिए यह और अप्रत्याशित था। मैंने पूछा: कहाँ से ले गये वे लोग तुम्हारा बच्चा? तब उसने जो अस्फुट बातें बतायी उनका सार यह था कि उसका पति सतना में फैक्ट्री में काम करता है। वह अपने इन दो बच्चों के साथ उससे लड़कर घर से निकल आयी। सोचा नर्मदा में नहा आयेंगे। इसी दौरान भटकती हुई किसी दस्तरा नामक स्थान पर पहुँची। वहाँ दो लोगों ने उसे बच्चों समेत उनके साथ चलने को कहा। वह नहीं गयी। तब वे बच्चे को खाना खिला लाने के लिए ले गये। सात साल का बच्चा। वे वापस नहीं आये। वह खोजती हुई मंडला चली आयी और इस बस में सिवनी जाने के लिए बैठ गयी। वह फिर बोली: मेरा बच्चा ढूँढ दो। फोन कर दो, लैटर लिख दो, मेरा बच्चा ढूँढ दो। मैं अचकचाकर सोचने लगा। मैं उस मुसीबतजदा औरत की सहायता करना चाहता था, पर समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूँ। इस बीच मैंने उसकी ओर बस के नीम अंधेरे में ही थोड़े ध्यान से देखा। एक दुबली पतली, गेहुएँ रंग की, तराशे हुए नाक-नक्श वाली, गोल चेहरे की एक मैली-कुचैली स्त्री, जो २४-२५ साल से अधिक की न होगी। एक मैली धोती-ब्लाउज में नंगे पाँव स्त्री जो एक मरियल-सा बच्चा गोद में लिए थी। मेरे पूछने पर मालूम हुआ कि उसकी गोद का बच्चा लड़की है और डेढ़ साल की है। पर उसके दुबले-पतले और अविकसित शरीर को देखते हुए वह मुझे छः महीने से ज्यादा की नहीं लगी। हाँ बच्ची की आँखों में एक परिपक्व-सी चमक जरूर थी। मैंने उससे फिर पूछा: लेकिन तुम घर से क्यों निकल आयी? यों ही घूमने, उसने जवाब दिया। पर साफ था कि बात इतनी सरल नहीं है। मैंने उसे आश्वासन दिया कि मैं दस्तरा के पुलिस थाने में पत्र तो लिख दूँगा कि इस तरह का बच्चा खो गया है, मिल जाये तो उसे इस पते पर

भेज दिया जाये, पर अगर वो लोग उसे ले गये हैं तो वे बड़ी धोड़े बैठे होंगे, पता नहीं कहाँ चले गये हों, इस तरह बच्चे का मिलना मुश्किल है; अच्छा यही है कि तुम अपने पति के पास चली जाओ और उसे ही बच्चा ढूँढ़ने के लिए भेजो। फिर यह सोचकर कि देखूँ इसकी बात में कितना सच है या यह जानने के लिए कि वह सचमुच पति के पास लौटना चाहती है या नहीं, मैंने कहा मैंने सोचा कि शायद तुम्हारा कोई नहीं है। यदि ऐसी बात हो तो तुम मेरे घर नौकरी कर सकती हो। घर का काम करना होगा और तुम्हें खाना, कपड़ा सब मिलेगा। कहाँ रहते हो, उसने पूछा। बाँदा, मैंने कहा, जानती हो तुम बादा को? हाँ सुना है, वह बोली, मुझे अपने घर रख लो, नौकरी करि हौं। वहाँ से भाग तो नहीं जाओगी, घर का सब काम करना पड़ेगा। सब काम करि हौं, वह बोली। और तुम्हारा पति? वह तुम्हें ढूँढ़ेगा नहीं। मैंने पूछा। नहीं, नहीं ढूँढ़ेगा, वह बोली। क्यों क्या वह तुम्हें चाहता नहीं है? चाहता है, उसने कहा। चाहता है फिर क्यों नहीं ढूँढ़ेगा? मेरे पास नहीं रहना, सौ रुपये महीना देना है। मेरी कुछ समझ में नहीं आया। और तुम्हारा बच्चा? मैंने कहा। वह रो पड़ी—उसे ढूँढ़ने के लिए ही तो भटक रही हूँ, उसे ढूँढ़ दो। मैं फिर चुप हो गया।

इसी बीच एक स्टॉप आया। पीछे बैठा कोई आदमी उतरने के लिए हमारी सीट के पास से गुजरा और उसका गलियारे में पड़ा हुआ पाँव कुचल गया। वह उठकर फिर पास ही की अपनी पहली सीट पर चली गयी। तब मैंने ध्यान दिया कि उसके पास अपने और अपनी बच्ची के शरीर के अलावा कुछ भी नहीं था—कोई झोला, कोई गठरी, कुछ भी नहीं।

थोड़ी देर बाद मैंने देखा वह अपनी टू-सीटर पर लेट गयी थी और आँचल ढँककर अपनी बिटिया को दूध पिला रही थी—दो दुबली-पतली, हड्डियों के ढाँचों पर बिना मांस के खाल चढ़ी मानव देहें। दोनों मिलकर एक नाचीज-सी, कुछ नगण्य-सी, महत्वहीन-सी, एक मैली कुचैली गठरी-सी किसी चीज का आभास देती हुई। एक दया के से भाव में मेरा मन

छिपता और मैं खिड़की के धुंधले शीशे में से अंधेरे जंगल में बरसती बरसात का बहुत कुछ अदृश्य दृश्य देखने लगा।

बिजली की रोशनियाँ दिखायी पड़ीं और बस फिर एक छूँछी बैरियर पर खड़ी हुई तो मैंने अपने से आगे वाली सीट पर बैठे सज्जन से पूछा: क्या नैनपुर आ गया, उन्होंने कहा—हाँ। वह उठ बैठी। गाड़ी बस स्टॉप पर पहुँची तो वहाँ चारों ओर अंधकार छाया था। सड़क की बत्तियाँ काफी दूर थीं। मैंने अपना अटैची-बिस्तर उठाते हुए उससे कहा — नीचे उतर आओ, यहीं से तुम्हें सतना की गाड़ी पकड़नी है। उसने मेरी ओर कुछ असमंजस के से भाव से देखा। मैं नीचे उतरकर खड़ा हो गया। रिक्शे वालों ने घेर लिया, कहाँ चलना है साहब ! मैं चुपचाप खड़ा उनके उतरने की प्रतीक्षा करता रहा। पर वह उतरकर बिना मेरी ओर उन्मुख हुए कंडक्टर से ही पूछने लगी, स्टेशन कैसे जाऊँ। स्पष्ट ही उसे मुझ पर कुछ अविश्वास या संदेह हो आया था। मैंने कहा—आओ मैं स्टेशन का रास्ता बता देता हूँ। पर वह नहीं आयी। मुझे लगा कि उसका व्यवहार मुझे वहाँ बचे दो-तीन लोगों के बीच अविश्वसनीय-सा बनाकर मेरा अपमान कर रहा है। मैंने कहा : अच्छा, अपने आप चली जाना, रात को ४ बजे जबलपुर के लिए गाड़ी मिलेगी उसमें बैठ जाना और फिर वहाँ से सतना के लिए दूसरी गाड़ी पकड़ लेना, यह लो रास्ते में खाने-पीने के लिए कुछ पैसे रख लो। और मैंने दो-दो के दो नोट उसकी ओर बढ़ा दिये। उसने ले लिए। मैंने एक रिक्शे वाले को बुलाकर कहा—चलो भाई रेलवे फाटक के पास अरोरा मास्टर साहब के घर। रिक्शा आगे बढ़ा, तभी वह पीछे से दौड़कर आयी—रुकिये, मुझे स्टेशन ले चलिये। स्पष्ट ही कंडक्टर तथा उसके साथ के किसी आदमी ने कहा होगा : इतने भले आदमी हैं, तुम्हारा किराया देकर तुम्हें यहाँ तक लाये उनके साथ स्टेशन क्यों नहीं चली जाती हो और हड़बड़ी में वह दौड़कर आ गयी। मैंने उसे रिक्शे में बिठा लिया और रिक्शे वाले से बोला—चलो भाई, पहले इन्हें स्टेशन छोड़ दो फिर अरोरा साहब के घर चलेंगे। वह रिक्शे में मेरे पास बैठ तो गयी पर मुझसे छू न जाये इसका ध्यान रखते हुए बिल्कुल किनारे की तरफ। यद्यपि बस स्टॉप पर के उसके व्यवहार से मैं थोड़ा-सा अपमानित

पाना आपको देखेगा। फिर अपनत्व भाव से कहा—यहाँ मुसीबत में फंसे अकेली औरत की मदद तो सबको करनी ही चाहिए थी। यह सोचा—आप बहुत अच्छे आदमी हैं शायद, भगवान आपको इसका बदला देगा। मुस्कराकर सोचने लगा—क्या सचमुच अच्छा आदमी हूँ। बेचारी मुसीबतजदा औरत को एक अनिश्चित स्थिति से दूसरी अनिश्चित स्थिति में ढकेल दिया। पता नहीं वह सतना पहुँच भी पायेगी कि यहीं फिर किसी मुसीबत में फंस जायेगी। फिर सोचा आदमी कितना स्वार्थी होता है। उपकार में से भी स्वार्थ की गुंजाइश निकाल लेता है। क्योंकि वह पति के पास जा रही थी, मैंने केवल रास्ते में भूखी न रहे, इसलिए उसे चार रुपये दे दिये, बस मेरे कर्तव्य की इतिश्री हो गयी। बीच में किसी टी० टी० द्वारा उतार दी जाये, किसी गुंडे-लफंगे द्वारा तंग की जाये, पुलिस के हाथों चढ़े, इन सब खतरों की मैंने कोई चिन्ता नहीं की। क्या वह मेरे यहाँ नौकर होकर जाने के लिए कहती, तो उसे बिना टिकिट ऐसे भेज देता? क्या टिकिट खरीदवाकर अपने साथ न ले जाता? वर्तमान स्थिति में भी क्या मैं उसे एकाध दिन अपनी बहिन के यहाँ ले जाकर नहीं रख सकता था या कम से कम उसे टिकट खरीदवाकर उसको गाड़ी में नहीं बिठा सकता था? यह सब सोचते हुए मेरा मन अपने आपको धिक्कारने लगा।

रात सोते हुए मेरे मन में फिर उसकी चिन्ता घुमड़ने लगी। सुबह उठा तो मन खिन्न था। मैंने सोचा एक बार स्टेशन जाकर देख तो आऊँ। वह ४ बजे वाली गाड़ी से चली गयी या वहीं है। छाता लेकर मैं चल पड़ा। दोनों प्लेटफार्मों का चक्कर लगाया, द्वितीय श्रेणी प्रतीक्षालय देखा पर वह कहीं नहीं थी। कम से कम वहाँ से चली ही गयी थी। पता नहीं सतना, अपने पति के पास या कहीं और अपने बच्चे को ढूढने के अबोध प्रयत्न में।

फाइट भर थी। कुछ दे-दुआ कर वेटिंग लिस्ट में नाम आ गया अब इसे हमारा भाग्य ही कहना चाहिए कि चार-चार चुनी हुई प्राचार्याओं ने यहाँ जॉइन नहीं किया और सरोज का नम्बर आ गया। वैसे इस भाग्योदय में *इस साली सक्सेना का भी कम हाथ नहीं था। यह चाहती ही नहीं थी कि* इसके रिटायरमेंट से पहले कोई चुनी हुई प्राचार्या जॉइन करे। वह जॉइन कर लेगी तो इस बूढ़ी गधी को उसी के नीचे काम करना पड़ेगा। इसलिए इसने जिस चुनी हुई प्राचार्या के पास नियुक्ति-पत्र पहुँचा, उसे ही डराने के लिए पत्र लिख दिया। यहाँ मैनेजमेंट में बड़े झगड़े हैं। कालेज स्थानीय राजनीति का अड्डा है। आप आ गयीं तो बड़ी मुश्किल में फसेंगी। यह ठीक है कि सक्सेना ने जो किया अपने ही स्वार्थ में किया, पर उसका लाभ तो हमीं लोगों को मिला। नहीं तो यह साधारणतया तो सम्भव नहीं था कि वेटिंग लिस्ट में चौथा नाम होते हुए भी नियुक्ति पत्र मिल जाता। डॉ० राजन ने तो अमरोहा में जॉइन करवाते हुए ही ऐसा बढ़िया मुहूर्त निकाला और ठीक उसी समय जॉइनिंग रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करवाये कि साल भर के अन्दर-अन्दर निश्चित प्रगति हो जाये। वे अपने विषय के तो माने हुए विद्वान हैं ही, ज्योतिष में भी कम दखल नहीं रखते। कितने निश्चित स्वर में उन्होंने कहा था। सरोज देख लेना साल भर के अन्दर-अन्दर तुम पोस्ट ग्रेजुएट कॉलिज की प्रिंसिपल हो जाओगी और सरोज ने उन्हें भावावेश में बाँहों में भर लिया था। वैसे साधारणतया वह ऐसी कोई हरकत मेरे सामने नहीं करती है और डॉ० राजन तो पूरा ध्यान रखते हैं।

पर यह जगह है एक कस्बा ही। जितनी बड़ी आबादी है उसकी तुलना में लोगों के दिल बड़े नहीं हुए हैं। मानसिकता कस्बाई ही है। अब देखिये, कॉलिज के क्लर्कों और चपरासियों को तो छोड़िये वे छोटे लोग हैं पर एम० ए०, एम० ए०, पी-एच० डी०, पी-एच० डी० शिक्षिकायें भी सुसंस्कृत नहीं हैं। उस दिन इसी बात पर कनफुसियाँ करती रही कि मेरी अनुपस्थिति में डॉ० राजन और सरोज के पलंग साथ-साथ लगे रहते हैं। अरे भाई समझती क्यों नहीं हो कि मेरा तो क्षेत्र ही दूसरा है। डॉ० राजन अपने कॉलिज से लम्बी-लम्बी छुट्टियाँ लेकर यहाँ न रहते तो क्या यह मिसेज सक्सेना और वह दुष्ट मैनेजर द्विवेदी उसे यहाँ टिकने देते? इस

सब मेरे हैं। मेरे अपने, और अविनाश भी कौन पराया है ? मेरा इ सम्मान करता है, उसे क्या मालूम कि वह मेरा नहीं है, डॉ० राजन हैं। सब बच्चे डॉ० राजन को ताऊजी कहते हैं और इसी रूप में उन सम्मान करते हैं। आखिर समाज में हमारी इज्जत है। सरोज एक प्रति कॉलेज की प्राचार्या है। दस लोगों का काम करती है, दस जगह बु जाती है। अब कोई चपरासी या क्लर्क यह सोचता हो कि डॉ० राजन से सरोज के अनुचित संबंध हैं तो इससे क्या ? कोई सामने कुछ कह तो सकता। यूँ पीठ पीछे लोग किसे छोड़ते हैं ? सीता तक को नहीं छोड़ा उनकी परवाह करना बेवकूफी है। आदमी को अपने काम से काम रख चाहिए, लोगों की बातों के चक्कर में पड़कर क्या अपना घर फूंक लें ?

फिर जैसी परिस्थिति मुझे मिली मैं ही जानता हूँ। एक साधा क्लर्क था। डॉ० राजन ने ही तो मेरी शादी करवायी। नहीं सरोज जै सम्पन्न घर की लड़की मुझे मुश्किल से ही मिलती। उन दिनों मेरी ब ही क्या थी। यह तो सरोज लैक्चरर हो गयी और अच्छी तनख्वाह प लगी तो मैं छुट्टी लेकर चार्टर्ड एकाउन्टेंट की पढ़ायी पूरी कर सका अ सरोज तो जो कुछ है, उन्हीं की बनाई हुई है। बी० ए० में उनके पास प एम० ए० में उनके पास। बताती थी कि किस तरह जब उसका फाइन था, एक पेपर खुद डॉ० राजन के पास था। उसमें उन्होंने 75 दिये। दूसरा उनके एक मित्र के पास, उससे अस्सी दिलवाये तब डिवीजन बना। नहीं तो प्रारंभ में वह कोई ब्रिलियेन्ट स्टूडेंट नहीं थी। लेक्चरर भी उन्हीं के कारण लगी। फिर रिसर्च की। इसे तो पूरी तरह डॉ० राजन की ही देन कहना चाहिए। बिचारे कैसे रात देर-देर तक जागकर उसका थीसस लिखते थे। कभी-कभी तो यह तक होता कि सरोज सो जाती और वे उसके लिए लिखते रहते, टाइप करते रहते। आज जो वह एक प्रतिष्ठित कॉलेज की प्राचार्या है, तो उन्हीं की बदौलत। उन्हीं के साथ अमेरिका गयी, कान्फ्रेंस में पेपर पढ़ा, अखबारों में नाम छपा। टेम्पेरी लेक्चरर होते हुए सर्विस कमीशन द्वारा हिंदी कालेज की प्रिंसिपल चुनी गयी और फिर एक साल के अन्दर-अन्दर स्नातकोत्तर महाविद्यालय की प्राचार्या हो गयी। खैर, इतने तक ने भी फेवर किया। पोस्ट ग्रेजुएट के लिए तो बस किसी तरह बनायी.

फाइल भर दी। कुछ दे-दुआ कर वेटिंग लिस्ट में नाम आ गया अब इसे हमारा भाग्य ही कहना चाहिए कि चार-चार चुनी हुई प्राचार्याओं ने यहाँ जॉइन नहीं किया और मरोज का नम्बर आ गया। वैसे इस भाग्योदय में इस साली सक्सेना का भी कम हाथ नहीं था। यह चाहती ही नहीं थी कि इसके रिटायरमेंट से पहले कोई चुनी हुई प्राचार्या जॉइन करे। वह जॉइन कर लेगी तो इस बूढ़ी गधी को उसी के नीचे काम करना पड़ेगा। इसलिए इसने जिस चुनी हुई प्राचार्या के पास नियुक्ति-पत्र पहुँचा, उसे ही डराने के लिए पत्र लिख दिया। यहाँ मैनेजमेंट में बड़े झगड़े हैं। कालेज स्थानीय राजनीति का अड्डा है। आप आ गयीं तो बड़ी मुश्किल में फसेंगी। यह ठीक है कि सक्सेना ने जो किया अपने ही स्वार्थ में किया, पर उसका लाभ तो हमीं लोगों को मिला। नहीं तो यह साधारणतया तो संभव नहीं था कि वेटिंग लिस्ट में चौथा नाम होते हुए भी नियुक्ति पत्र मिल जाता। डॉ० राजन ने तो अमरोहा में जॉइन करवाते हुए ही ऐसा बढ़िया मुहूर्त निकाला और ठीक उसी समय जॉइनिंग रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करवाये कि साल भर के अन्दर-अन्दर निश्चित प्रगति हो जाये। वे अपने विषय के तो माने हुए विद्वान हैं ही, ज्योतिष में भी कम दखल नहीं रखते। कितने निश्चित स्वर में उन्होंने कहा था। सरोज देख लेना साल भर के अन्दर-अन्दर तुम पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज की प्रिंसिपल हो जाओगी और सरोज ने उन्हें भावावेश में बाँहों में भर लिया था। वैसे साधारणतया वह ऐसी कोई हरकत मेरे सामने नहीं करती है और डॉ० राजन तो पूरा ध्यान रखते हैं।

पर यह जगह है एक कस्बा ही। जितनी बड़ी आबादी है उसकी तुलना में लोगों के दिल बड़े नहीं हुए हैं। मानसिकता कस्बाई ही है। अब देखिये, कॉलिज के क्लर्कों और चपरासियों को तो छोड़िये वे छोटे लोग हैं पर एम० ए०, एम० ए०, पी-एच० डी०, पी-एच० डी० शिक्षिकायें भी सुसंस्कृत नहीं हैं। उस दिन इसी बात पर कनफुसियाँ करती रहीं कि मेरी अनुपस्थिति में डॉ० राजन और सरोज के पलंग साथ-साथ लगे रहते हैं। अरे भाई समझती क्यों नहीं हो कि मेरा तो क्षेत्र ही दूसरा है। डॉ० राजन अपने कॉलेज से लम्बी-लम्बी छुट्टियाँ लेकर यहाँ न रहते तो क्या यह मिसेज सक्सेना और यह दुष्ट मैनेजर द्विवेदी उसे यहाँ टिकने देते ? इस

के साथ, किसी अन्य पुरुष का चाहे वह उसका जेठ ही क्यों न हो, इस तरह लगातार बने रहना बहुत सामान्य तो नहीं है। ऐसे में तो सभी से प्रेमपूर्ण व्यवहार रखकर अपना काम निकालना चाहिए। पर चोरी की जगह सीनाजोरी उनका स्वभाव ही बन गया है। मुझे डर लगता रहता है कि कहीं इसमें हम लोग गच्चा न खा जाएं।

अखरता तो कभी-कभी मुझे भी है कि कालेज का एक-एक क्लर्क, एक एक चपरासी हर बात डॉ० राजन से पूछ कर करे और वकील मोठा लाल के, मुझे कोई घास न डाले। पर फिर सोचता हूँ आखिर मैं हूँ क्या, एक चार्टर्ड एकाउटेंट ही तो। चाहे एक स्नातकोत्तर कॉलेज की प्राचार्या का पति हूँ। पर पति होने का अभिमान मुझे कभी रहा ही नहीं। डॉ० राजन से शुरू से ही दबता था, उन्हें बड़ा मानता था। सरोज के वे गुरुजी थे। मुझे देखने आये थे, उसके छोटे भाई के साथ कैसा इन्टरव्यू किया था मेरा, मुझे पसन्द करने से पहले। उन्हीं के हाँ करने से सरोज के साथ मेरी शादी हुई। विदाई के समय वह कैसी बिलख-बिलखकर रोई थी उनकी कमर से लिपट कर। ऐसी तो अपने बाबूजी से लिपटकर भी नहीं रोई थी। सच कहता हूँ मुझे बुरी तरह अखर गया था। मेरा मन अनमना हो गया। इतना सारा सामान दिया था बाबूजी ने, इतनी शानदार शादी की थी पर मेरे लिए जैसे सब बेकार हो गया। आखिर सुहाग की रात में ही मैंने उससे कठोरता से पूछ लिया; डॉ० राजन से तुम्हारा क्या संबंध है? उसने गंभीर और निष्कम्प स्वर में उत्तर दिया था। डॉ० राजन मेरे गुरु है, बड़े भाई के समान है, मैं जो कुछ हूँ उन्हीं की बनाई हुई हूँ। मेरे मन में उनके प्रति अगाध श्रद्धा है। मैं उसकी दृढ़ता से प्रभावित हुआ। भीतर ही भीतर यह प्रश्न पूछने के लिए अपने आपको छोटा महसूस किया मैंने। और तब तक उसने मुझ पर चुम्बनों की बौछार कर दी। मुँह, आँख, गाल, माथे, गले पर चुम्बनों के ढेर। मुझे कल्पना नहीं थी कि कोई नवयुवती आगे बढ़कर किसी युवक को, चाहे वह उसका पति ही क्यों न हो, इस तरह प्यार कर सकती है। और मैं उसके प्यार में डूब गया। थोड़े दिनों में सरोज लेक्चरर हो गयी। उसे मुझसे अलग मेरठ जाकर रहना पड़ा। डॉ० राजन ने ही उसे मकान दिलवाया। रिसर्च करवायी। आखिर एक दिन मेरे सामने

उनके सबधो का सारा भेद खुल गया अपनी आँखों से देख लिया। था मैं। पर तब तक हम लोग दो बच्चों के माँ-बाप हो चुके थे। बड़ा स्कूल जाने लगा था। मैंने हिम्मत करके सरोज से कहा—ऐसे कैसे चलेगा, तुम तो कहती थी डॉ० राजन तुम्हारे बड़े भाई हैं। वह फिर दृढ स्वर मे बोली—डॉक्टर साहब मेरे सब कुछ हैं, भाई भी, पिता भी और पति भी। मैं उनके बिना नही रह सकती। मेरे ही लिए उन्होने शादी नही की। तुम मुझे छोडना चाहो, खुशी से छोड़ दो। वे मुझ से शादी कर लेंगे अब उन्हें किसी का डर नही है। हाँ, तुम्हे ही कोई ढंग की लड़की नही मिल पायेगी। सोच लो। वैसे उनकी होते हुए भी मैंने तुम्हारी होने मे कोई कमी नही रखी। तुम्हारे बच्चो को ढग से पाल रही हूँ। तनख्वाह जोड़-जोड़ कर और अपनी चूड़ियाँ देकर तुम्हारी बहिन की शादी करवा दी है। आगे भी तुम्हारे परिवार के लिए सब कुछ करती रहूँगी। बस, डॉक्टर साहब से अलग नही हो सकती।

सच कहूँ, उसकी दृढता और स्पष्टता ने मुझे बहुत प्रभावित किया—भीतर ही भीतर मे कही डरा भी दिया। ऊपर से सब कुछ ठीक है। मेरी इज्जत है। पैसा है। मजे का जीवन है क्या मैं इस सारी बनी-बनाई व्यवस्था को भराभरा दूंगा—अपने को टटोला तो सब कुछ तोड-फोड कर फिर नये सिरे से बनाने के लिए जो साहस चाहिए, जो हिम्मत चाहिए, वह अपने भीतर नही दिखायी दी। अपना बनियापन उभर आया। जो है उसे बचाओ छब्बेजी बनने की कोशिश न करो, कहीं दुबे बनकर न रहना पड़े। मैंने उसकी ओर कातर नजरो से देखा—यह बताओ तुम मुझे कितना प्यार करती हो ? उसने मुझे बाँहों में भर लिया—बहुत, अब तो और भी ज्यादा करती हूँ। और पौरुष को सहलाने लगी। इन कामों मे वह हमेशा बड़ी कुशल रही है। आगे बढकर करती है, और मेरे मन मे उसके प्रति जो भी मलाल होता है वह उन उत्तप्त क्षणो मे सब घुल जाता है।

बस वह दिन आखिरी दिन था, जब मैंने उसे टोका, उसके बाद दिन निकलते गये। वह प्रगति करती गयी। बच्चे बड़े होते गये। मैं भी क्लर्क से चार्टर्ड एकाउन्टेंट हो गया। पर हमारा साथ रहना नही हुआ। बच्चे उसी के पास रहते रहे, मैं आता रहा। मुझसे ज्यादा डॉ० राजन उसके

पास रहे। पहले मैं उन्हें सरोज के बड़े भाई बताता था, धीरे-धीरे अपने बड़े भाई बताने लगा। यहां भी सब उन्हें उसके जेठ ही समझते हैं। परिचितों, मित्रों, सबने मेरे घर में उनकी यह स्थिति बरसों से स्वीकार की हुई है।

उस दिन की बात है। मैं अकेला घूम कर कॉलेज लौट रहा था। डॉ० राजन और सरोज घर में ही थे। ज्यों ही मैं कालेज के फाटक की ओर मुड़ा मेरे पीछे-पीछे आ रहे दो लोगों में से एक ने फब्ती कसी—साला नपुंसक कहीं का। मेरे भीतर एक झुरझुरी-सी फैल गई। मन किया कि मुड़कर देख लूं वे कौन हैं, पर हिम्मत नहीं हुई। भारी कदमों से क्वार्टर में घुसा तो देखा सामने ही पलंग पर बैठे हुए डॉ० राजन पास बैठी हुई सरोज को कोई पत्र डिक्टेट करवा रहे थे। सीधा बाथरूम में चला गया। कपड़े उतारे और नहाया। अपने आपको देखने लगा: क्या मैं सचमुच नपुंसक हूं। क्या पांच-पांच बच्चों का बाप नपुंसक हो सकता हूं? फिर मैंने वहीं से ऊंची आवाज में पुकारा, सरोज, जरा तौलिया ला देना। उसने वहीं से कहा: मीठालाल जरा साहब को तौलिया देना। मैंने लगभग डांटने हुए से स्वर में कहा—नहीं, तुम खुद लेकर आओ। वह उठी और तौलिया ले आयी। मैंने बाथरूम का दरवाजा थोड़ा-सा खोला और तौलिए की जगह उसकी कलाई पकड़कर उसे भीतर ले लिया। चिटकनी लगा ली। क्या करते हो, वह बोली। जो अधिकार है, मैंने दृढ़ता से कहा और उसे फर्श पर लिटा दिया। वह अचकचा कर थोड़ी नम्रता से बोली—घर में कई लोग हैं। कोई बात नहीं, मैंने कहा।

और हमने चिर-परिचित शिखरों की यात्रा शुरू कर दी। धीमे-धीमे पर सधे हुए कदमों से। हमने साथ-साथ ऊंचाइयां पार कीं और साथ-साथ उतरे। विश्रान्ति के उन अलस क्षणों में मैंने स्नेह भरे स्वर में उससे पूछा—सच-सच बताना सरोज, क्या मैं तुम्हें संतुष्ट नहीं कर पाता? कौन कहता है, उसने पूरे अपनाव से मुझे अपने भीतर कसते हुए जवाब दिया, आप तो जरूरत से ज्यादा ही करते हैं, और वह मुस्करा दी। अब मैंने भी चुटकी ली . क्या डॉ० राजन से भी ज्यादा? हां, उनसे भी ज्यादा, आखिर आप उनसे छोटे भी तो हैं, उसने कहा और मुंह मेरे सीने में छुपा लिया।

इंतजार

पिताजी ने लिखा था कि उनकी माँ गुजर गयी। तभी से मैंने सोच लिया था कि अबकी गर्मी की छुट्टियों में जब मैं घर जाऊँगा, एक बार उसके यहाँ भी हो आऊँगा। मरने पर तो दुश्मन के यहाँ भी लोग चले जाते हैं। फिर निरन्तर बीतते समय ने मुझे उसके प्रति बहुत कुछ तटस्थ कर दिया था। वह नफरत, वे कटुताएँ, जो उन दिनों मेरे रोम-रोम को सालती थीं, धीरे-धीरे धुँधला गयी थीं। समय ने और मेरे अपने नये सुखद गृहस्थ जीवन ने वे घाव बहुत कुछ भर-से दिये थे, जो उसने लगाये थे। बस खुरंड भर बाकी थे। मैंने सोचा कि मुझे पूरे आठ साल बाद अपने घर आया देखकर वह अचकचा तो जरूर जायेगी—पर मेरा स्वागत ही करेगी। मैं भी सहानुभूतिपूर्वक उसकी माँ की चर्चा करूँगा, पूछूँगा—कैसे गुजर गयीं और लगे हाथ अपनी बच्चियों को भी देख लूँगा। कितने साल से उन्हें देखा भी नहीं था। वह शायद जुलाई का ही महीना था जब आठ साल पहले कोर्ट में मैंने गुड़िया को देखा था। उसके बाद उसे देखने के लिए मेरा जी कितना-कितना तरसता रहा। सालहासाल मैं गर्मीकी छुट्टियों में, या कभी बीच में आता और उस सड़क के किनारे की किसी परिचित की दुकान पर घंटों बैठा टकटकी लगाये सड़क को देखता रहता—शायद गुड़िया वहाँ से निकल जाये। हर आती हुई उसकी उम्र की लड़की को ध्यान से देखता, कहीं ऐसा न हो कि वह मेरे सामने से निकल जाये और मैं उसे पहचान न पाऊँ। पर दुर्योग इतना गहरा था कि इन आठ सालों में वह एक बार भी नहीं दिखायी दी। एक बार तो मैं उसके स्कूल के बाहर.

छुट्टी के समय, लगभग आधा घंटा खड़ा रहा, सब बच्चे निकले, पर वह नहीं निकली। क्योंकि उससे पहले मैं स्कूल में जाकर उसके व्यवस्थापक से, जो मेरे पुराने परिचित थे, मिल आया था, इसलिए शायद उसे मेरे आने की खबर मिल चुकी थी और उसने दोनों बच्चियों को पिछवाड़े के रास्ते से घर भेज दिया था, क्योंकि पूरे आधे घंटे के इन्तजार के बाद वह अकेली अपने मोटे-मोटे कूल्हे हिलाती हुई अपने चेहरे पर स्याही-सी पोते हुए निकली। मैंने उसे देखा और मुँह फेर लिया। वह पहले से कहीं थुल-थुल और काली हो गयी थी—बिल्कुल अधेड़ औरत।

घर आकर अपने छोटे भाई से पूछा—गुड़िया दिखाई दी थी? उसने बताया—वह दसवीं में फर्स्ट आयी है। मैं खुश हुआ। उसकी माँ कब गुजरी—मैंने दूसरा सवाल किया। सात-आठ महीने हो गये, उसने जवाब दिया। मैंने कहा—सोचता हूँ एक बार मिल आऊँ, माँ के मरने पर तो चले ही जाना चाहिए। इसी बहाने बच्चियों को भी देख लूँगा। पूरे आठ साल से देखा नहीं है। अब तो गुड़िया काफी बड़ी हो गयी होगी? हाँ, लम्बी भी बिल्कुल आपकी तरह निकली है, भाई ने उत्तर दिया। मैंने भाई से उसके घर का पता मालूम किया और यह मालूम किया कि वे लोग स्कूल से साढ़े बारह बजे आ जाते हैं। तय किया कि चार बजे के करीब उसके घर जाना चाहिए, ताकि दोनों बहिनें भी मिल जायें और दोनों बच्चियाँ भी।

मैंने रिक्शा किया और सिंचाई भवन की ओर चल पड़ा। भाई के बताये अनुसार सरकारी क्वार्टरों की लाइन के आखिरी क्वार्टर तक पहुँचकर मैंने वहाँ खेल रहे एक बच्चे से पूछा—नीलम परिहार का मकान कौन सा है? उसने उसी आखिरी मकान की ओर संकेत किया और साथ ही आवाज भी दे दी—नीलम मौसी, आपके यहाँ कोई आया है। नीलम उसकी छोटी बहिन थी। शादी नहीं हुई। यहीं के सरकारी मिडिल स्कूल में पढ़ाती है। क्वार्टर उसी को मिला हुआ है। उसी के साथ वह भी रहती है, अपनी दोनों बेटियों के साथ।

दस साल पहले वह मुझसे अलग होकर मेरे पैतृक निवास स्थान में ही आ गयी थी, क्योंकि यहीं उसकी छोटी बहिन नीलम सरकारी स्कूल में

पढ़ाती थी और माँ उसके पास रहती थी। यह अलगाव कई बरसों की निरन्तर किच-किच की अन्तिम परिणति था। मैं उसके गदगी-पसंद आलसी स्वभाव से तंग था, उसके झगडालूपन से पीड़ित था और कुपित था जान-बूझकर की जाने वाली मेरी अवज्ञाओं से। इस बीच एक और बात भी हो गयी थी जिसने हमे दूर करने मे और मदद की। वह ग्रीष्मावकाश मे अपने मायके गयी थी, मुझसे काफी लड़-झगड़कर, मैंने राहत की साँस ली थी। तब बड़ी बिटिया गुड़िया तीन सवा तीन साल की रही होगी। एक दिन उसका पत्र आया कि वह गर्भवती है और इस-लिए शीघ्र ही वापस लौटना चाहती है। मैं चकित रह गया। यह कैसे हुआ? उसके रोज-रोज के कलह मे परेशान होकर मैंने तो यह तय कर लिया था कि अब हमारे कोई संतान नही होगी। एक जो है, पता नही उसकी किस्मत में क्या है। ऐसे कलहपूर्ण वातावरण मे किसी और को लाने का कोई मतलब ही नही था। मैं लगातार निरोध का प्रयोग करता था, क्योंकि अपने इरादे के बारे मे पक्का था। फिर भी उसने लिखा था कि वह गर्भवती है। मेरी समझ मे कुछ नही आया। फिर भी एकाएक कुछ कहा भी तो नही जा सकता था। मुझे याद आया एक दिन कलहपूर्ण वातावरण मे उसने मुझे कहा था, तुम मुझे समझते क्या हो? जब तुम बूढ़े हो जाओगे और मुझे छोड़ने की स्थिति मे भी नहीं रहोगे, तब तुम्हें एक बात बताकर ऐसा सदमा पहुँचाऊँगी कि तुम्हारे सामने आत्महत्या के सिवा कोई चारा न रहे। क्या यह उसी की प्रस्तावना थी? मैंने उसके पत्र का कोई जवाब नही दिया और चुपचाप दिन काटता रहा। पर एक दिन वह अपने आप बिना किसी पूर्व सूचना के आ धमकी और फिर वही

कहो, तुमने वापस भेजने का वादा किया है। वह कुटिलता से मुस्कुराई—बिना ऐसे वादे के आप मानते क्या? मुझे अपने पाँवों के नीचे की जमीन खिसकती नजर आयी। पर गुड़िया ने सहारा दिया—नहीं, हम तीन-चार दिन में पापा के साथ वापस चले जायेंगे, हमें यहाँ नहीं रहना है। अच्छा-अच्छा चुप रह, वह घुड़ककर बोली। तभी नीलम ने मुझे एक झोला थमाते हुए कहा—जीजाजी जरा सब्जी ला दीजिये, खाना खाकर जाइयेगा। पता नहीं किस प्रभाव से, शायद स्थिति को जरा स्थिरता देने के लिए, समय को जरा थामने के लिए मैं झोला लेकर नीचे उतर गया। दस-पन्द्रह मिनिट में, अन्य चीजों के अलावा ग्वार की ताजा फलियाँ लेकर लौटा, जो नीलम बड़ी स्वादिष्ट बनाती थी, तो देखा कि घर में अकेली नीलम है। पूछा वह और बच्चे कहाँ हैं? नीचे गये हैं, नीलम ने सहज बनते हुए कहा। धड़कते हुए दिल से मैंने नीचे रहने वाले मकान मालिक के हिस्से में जाकर देखा। वे नहीं थे। पूछा तो बुढ़िया ने कहा—गुड़िया को लेकर कहीं भाग गयी। भाग गयी? मुझे पूरी उद्विग्नता के बावजूद विश्वास-सा नहीं हो रहा था। कहाँ भाग गयी। उसके बाद दो दिन मैं लगातार कस्बे की गलियों-गलियों में भटकता रहा, हर एक घर में झाँक-कर देखता कि कहीं मुझे मेरी गुड़िया दिखायी दे जाये। बाद में किसी ने मुझे बताया कि दो दिन वह बच्चों के साथ किसी परिचित के घर छिपी रही उसके बाद रामनगर से उसका पुलिस सब-इंस्पेक्टर भाई आया और उसे अपने साथ लिवा ले गया।

पर यह एक लम्बी और दर्दभरी कहानी है, इतने साल बाद भी उसे याद करने में भी मेरी रूह काँपती है, जैसे नरक की कोई खिड़की खोलकर भीतर का दृश्य देखने में काँपे। बस यही कहूँगा कि मेरा जैसे सब-कुछ खो गया। सर्वहारा शब्द का सही अर्थ पहली बार अनुभव किया। भागा-भागा रामनगर तक गया, पर बच्ची से मिल नहीं पाया। हारकर एक दिन उसके दीवाली के लिए नये सिलवाये हुए कपड़ों का हैण्डबैग नीलम के घर दे आया कि बिचारी पहिन तो सके। एक वकील मित्र ने सेशन कोर्ट में गुड़िया की संरक्षकता के लिए अर्जी दिलवा दी। उसने बताया कि चार साल से बड़ी सन्तान का संरक्षक पिता होता है, लड़की तुम्हें मिल जायेगी।

लेकर बच्चियों के साथ कहीं बाहर चली जाती या बीमारी का बहाना कर घर मे पड़ी रहती। घर उसके जाने की मैंने कभी कोशिश न की।

आज जब मैं उसके घर पहुँचा, बाहर का दरवाजा भिड़ा हुआ था। दरवाजा खोलते ही एक पुराना परिचित दृश्य नजर आया : सबसे पहले रास्ते मे जूठे बर्तन बिखरे हुए, सामने बरामदेनुमा रसोई और उसमे खुलने वाले आठ गुणित आठ फीट के दो कमरे। एक के फर्श पर वह लेटी थी, दूसरे के फर्श पर नीलम। केवल पेटीकोट ब्लाउज पहने, जैसी कि उनकी आदत थी। रसोई की तरह प्रयोग किये जाने वाले बरामदे मे एक सात-आठ साल की लगने वाली कटे बालो वाली लडकी किताब हाथ मे लिये बैठी थी। मेरे 'नीलम !' पुकारते ही उसने अपनी माँ की ओर उन्मुख होकर कहा—मम्मी देखो तो कोई आया है। वह हड़बड़ाकर उठी और साडी पहनने लगी। सामने के कमरे से नीलम भी उठ खड़ी हुई और बोली—साडी पहनकर आती हूँ, जीजाजी। मैं मुँह मोडकर खड़ा हो गया। स्पष्ट ही था कि लडकी नन्ही थी। मैंने उसकी ओर देखा : एक बेपहचाना, बेगाना चेहरा। किसी भी कोण से अपना नहीं। किसी मित्र की, परिचित की बेटी जितना भी नहीं। नहीं, वह उसी की थी, पूरी तरह उसी की—उसके स्वेच्छाचार की परणति।

एक मिनिट मे वह साडी लपेटकर आ खड़ी हुई और रूखे सख्त स्वर मे बोली—कहिये, किससे काम है ? यह अप्रत्याशित था। पता नहीं क्यों मैंने यह सोच लिया था कि उसके प्रति मेरी पिछले आठ सात की तट-स्थता ने उसे कुछ तो सामान्य कर दिया होगा। वह उत्साह से मेरा स्वागत करेगी, यह कल्पना तो मैंने नहीं की थी, पर मन ही मन मेरे आने पर खुश जरूर होगी, यह मुझे लगा था। इसलिए उसके सख्त-निश्चल स्वर ने मुझे अचकचा दिया। किसी तरह अपने को संभालकर मैंने कहा—तुम्हारी माँ गुजर गयी थी, सोचा अफसोस जाहिर कर आऊँ, तो आ गया। तब तक नीलम ने भी साडी पहन ली थी, अपने कमरे का अधखुला दरवाजा पूरा खोलकर बोली—आइये, बैठिये। मैं उसे वहीं खड़ी छोड़कर नीलम के कमरे में घुस गया और तख्त पर बैठ गया। वह परेशान-सी कभी कमरे में और कभी बाहर टहलती रही। मैं उसके अस्तित्व की उपेक्षा करके नीलम

में बातें करने लगा। कब गुजरी माँ, कैसे क्या हुआ ? इस सिलसिले में उसने मेरी नयी शादी की, मेरे यहाँ बिटिया होने की और आखिर में मेरे बेटे के इस नगर में मनाये गये जन्मोत्सव की चर्चा सहज रूप से कर डाली। गुड़िया के दसवीं में फर्स्ट आने की सूचना देने पर जब मैंने नीलम से कहा, बधाई हो, तो वह तपाक से बोली—आपको, आखिर बेटी तो आपकी ही है। मैंने उदास स्वर में कहा—नहीं, मुझे तो उससे मिलने तक का अधिकार नहीं, आज आठ साल हो गये उसकी शक्ल तक नहीं देखी। नीलम ने मेरी बात काटकर कहा—आपकी छोटी गुड़िया भी बिल्कुल बड़ी गुड़िया पर ही गयी है। तुमने कब देखा ? मैंने कहा। वह मुस्कुराकर बोली—सुना है। आपके कई भक्त मेरे परिचय क्षेत्र में रहते हैं, जो मुझे आपके सब समाचार देते रहते हैं, यह भी मुझे मालूम है कि फरवरी में आपको पुरस्कार मिला था। तुमने ठीक सुना है, मैंने कहा। उसे पाकर मुझे लगा जैसे मेरी खोई हुई गुड़िया मुझे वापस मिल गयी। तभी तो मैं जी सका। नहीं तो जो घाव इस औरत ने गुड़िया को भगाकर लगाया था, उसका भरना मुश्किल था, मैंने बरामदे में घूमती हुई मोटी की ओर देखकर अपना स्वर धीमा कर दिया।

गुड़िया कहाँ है ? मैंने नीलम से थोड़े भारी स्वर में पूछा, दिखाई नहीं दे रही। नीलम ने सहज बनते हुए कहा—बाजार गयी है, किताबें खरीदने। अकेली ? नहीं, दो सहेलियाँ भी साथ हैं, आती होंगी। यह सुनते ही उद्विग्नता में बाहर चक्कर काट रही मोटी भीतर आ गयी और सीधे मेरी ओर उन्मुख होती हुई मेरा नाम लेकर बोली—तुमको अब गुड़िया से क्या मतलब है ? तुम यहाँ क्यों आये ? जब मैं तुम्हारी कुछ नहीं लगती तो गुड़िया तुम्हारी क्या लगती है ? मैंने बिना भड़के उत्तर दिया—राग के रिश्ते विफल हो सकते हैं, टूट सकते हैं, पर रक्त के रिश्ते दूसरी तरह के होते हैं। तुम मेरी कुछ नहीं हो, पर गुड़िया मेरी बेटी है और रहेगी, यहाँ तक कि मैं नहीं चाहूँ तो भी रहेगी। इस पर वह एकदम भड़क उठी—गुड़िया सिर्फ मेरी बेटी है और किसी की नहीं। जब तुम पिता का कर्तव्य ही नहीं निभा सके तो उसे बेटी कहने किस अधिकार से हो ? मैं व्यंग्य की हँसी हँसा—अच्छा ! पिता का कर्तव्य ! किसी की बेटी

को कोई जबरदस्ती भगाकर ले जाये। उसे उससे मिलने न दे। वह पत्र भी लिखे, जन्म दिन पर उपहार भी भेजे तो उस तक पहुँचने न दिया जाये और फिर कहा जाये कि वह पिता का कर्तव्य नहीं निभा रहा है। इस पर वह और भी ऊँची आवाज में बोली—मैं तुम्हें उसका पिता नहीं मानती कोई जरूरत नहीं मेरे घर में कदम रखने की। फिर कभी आने की कोशिश की तो गोली मरवा दूँगी। उसके भीतर से उसका पुलिस सब-इंस्पेक्टर भाई बोल रहा था। अब मैंने भी स्वर ऊँचा किया—मैं तो खुद जबरदस्ती उससे मिलना नहीं चाहता था, मिलना चाहूँगा तो देखूँ कौन माई का लाल मुझे रोक लेता है? मैंने तो सोचा था कि अब तक तुम्हारा पागलपन कुछ कम हुआ होगा और तुम आगा-पीछा अपने बच्चों का हित-अनहित सोचने लगी होगी। पर देखता हूँ कि तुम अब भी वैसी की वैसी जड़ हो जैसी छोड़ा समय थी। और मैं एक झटके के साथ उठ खड़ा हुआ। बिना उसकी ओर देखे मैं दरवाजे की ओर बढ़ गया, वह दरवाजा बन्द करने पीछे-पीछे आयी। मैंने उसकी ओर उन्मुख हुए बिना ही दरवाजे से निकलते हुए एक तरफ जोर से थूका और सड़क पर आ गया।

सड़क पर आकर मैं लगभग एक घंटे तक उस तिराहे के दोनो प्रमुख रास्तो पर दूर-दूर तक चहलकदमी करता हुआ टहलता रहा, ताकि गुड़िया अपनी सहेलियो के साथ बाजार से लौट रही हो तो दिखायी दे जाये। पर व्यर्थ। वह नहीं आयी। पता नहीं उसने उसे कहाँ भेज दिया था। अपने भाई के एक पड़ोसी परिवार से, जिनका एक बच्चा उसी स्कूल मे पढता था, उसके स्कूल जाने के समय का पता करके मैं फिर दूसरे दिन सुबह साढ़े छह बजे ही उसके घर से स्कूल जाने वाले रास्ते पर निकल आया। सात बजे तक उसे दोनो बच्चियो के साथ रिक्शे पर स्कूल पहुँचना चाहिए था। पर उसका और बच्चियो का कहीं दूर-दूर तक पता न था। मैंने सोचा वह पुरानी आलसी है, हो सकता है देर से निकले। थककर मैं रास्ते के एक छोटे से ठेले वाले चाय के 'होटल' की एकमात्र बेंच पर बैठ गया और मैंने सिन्धी चाय वाले से एक स्पेशल चाय बनाने के लिए कहा। आधा घंटा और मैंने चाय पीने के बहाने काट दिया। इस बीच मेरी नजरें लगातार उसके घर की ओर से आने वाली सड़क पर टिकी रही। दूर से

आने वाले प्रत्येक रिक्शे को मैं ध्यान से देखना शुरू कर देता—मेरा दिल धड़कने लगता—हो न हो इसमें गुड़िया होगी—पर नहीं, उसके पास आते-आते मेरा दिल डूबने लगता—उसमें कोई और ही निकलता। आखिर पौने आठ बजे मैंने हार मान ली और भारी कदमों से लौट पड़ा। थकान के मारे चला नहीं जा रहा था, मैंने एक रिक्शा किया और भाई के घर लौट आया। पूरे सात साल में मैंने उसकी एक झलक तक नहीं देखी थी। मेरे मित्र लोग कहते, दूर से ही पहचानी जाती है कि वह तुम्हारी लड़की है। वही नाक-नक्श, वही ऊँचा कद और मैं उसे एक नज़र देखने के लिए तरस रहा था।

जज के द्वारा गुड़िया उसे दे दिये जाने के बाद मेरे वकील ने मुझे कहा था, चिन्ता न करो, हाई कोर्ट तक लड़ेंगे, लड़की हर हालत में तुम्हें मिलेगी, पर मेरी हिम्मत छूट गयी थी। मैंने समझ लिया था, किसी अन्तर्बोध से, कि इस अभिशप्त चक्र में पड़ा रहा तो कहीं का नहीं रहूँगा। पता नहीं कितने साल कानूनी जंजाल में कट जायें। तब तक न जाने नये सिरे से जीवन शुरू करने का उत्साह भी रह जायेगा या नहीं। यदि पाँच-सात साल की मुकदमेबाज़ी के बाद लड़की मुझे मिल भी जाये तो भी मेरी ज़िन्दगी क्या रह जायेगी? हो सकता है तब तक वह उसमें इतनी प्रभावित हो चुके कि मेरे पास रहना ही पसन्द न करे। एक लम्बे और इसलिए मेरे लिए शुरू से ही हारे हुए संघर्ष के बाद मेरे पास उसको देने के लिए क्या रह जायेगा, यन्त्रणाओं से टूटे हुए एक दयनीय जीवन के अलावा? इसलिए मैंने रस्सी के उस छोर को और खींचने की बजाय वहीं छोड़ देना उचित समझा। इसे यहीं छोड़ दो, अपना नया जीवन शुरू करने की कोशिश करो, मैंने अपने आप से कहा, हो सकता है यह उलझा हुआ सूत्र भी समय पाकर कभी अपने आप सुलझ जाये। समय को अपना काम करने दो। टी० एस० ईलियट की इन पंक्तियों को मैं बार-बार अपने आपको सुनाता :

आइ सेड टु माइ सोल
बी स्टिल एण्ड वेट विदाउट होप
फार होप वुड बी होप फॉर राग थिंग

वेट विदाउट लव
फार लव वुड बी लव आफ रांग थिंग
यट देयर इज फेथ
बट द होप एण्ड द लव एण्ड द फेथ आर आल इन वेटिंग।

आल इन वेटिंग और इन्तजार करते-करते ये आठ साल निकल गये। शुरू-शुरू में बहुत तिलमिलाहट होती थी, पर धीरे-धीरे कम होती गयी। बिछुड़ने के बाद पहली बरस गाँठ पर मैंने गुड़िया को सौ रुपये का मनी-आर्डर भेजा। पता नहीं उसे पता भी लगने दिया गया या नहीं, पर उसकी माँ के हस्ताक्षरों के साथ रसीद मुझे मिल गयी। फिर दोनों बच्चियों की बरसगाँठों पर मैंने उनके लिए ऊनी कपड़े भेजे। रख लिए गये। तब तक गुड़िया की दसवीं बरसगाँठ नजदीक आ गयी। मैंने राजपाल एण्ड सन्ज से किशोरोपयोगी पुस्तकों का एक बड़ा-सा पारसल उसे भिजवाया। पता नहीं वह रुपयों की या किसी और चीज की आशा कर रही थी या उसने सोच-समझकर नीतिगत निर्णय किया था, पारसल उस महिला ने वापस कर दिया। उसके बाद एक दो साल मैं चुप लगा गया। फिर एक बार मेरा मन नहीं माना, मैंने दोनों बच्चियों के लिए कपड़ों का एक पारसल उनके स्कूल के प्रबंधक केअर ऑफ भेज दिया। उन्होंने ले लिया, रसीद भी आ गयी। पर थोड़े दिन बाद पारसल नये सिरे से पोस्टेज लगाकर वापस कर दिया गया। निश्चय ही उस महिला ने उसे रखने से इनकार किया होगा और जोर दिया होगा कि उसे वापस किया जाये। बस उसके बाद मैंने कुछ नहीं भेजा।

आठ साल! लेकिन लगता है जिन्दगी के गंभीर उतार-चढ़ावों के लिए यह कोई लम्बी अवधि नहीं है—पता नहीं कितने साल और इतजार करना होगा। एक दुराशा भरा इन्तजार।

जून '8-

चोर-लुटेरे भाई-भाई

किसी गाँव में एक भोला-भाला किसान रहता था। वह बिचारा चुपचाप अपने खेत में हल चलाता और खेती करता था। बड़ी मेहनत करके वह भरपूर फसल घर में लाता था, पर उसे यह देखकर बार-बार आश्चर्य हुआ करता था कि घर के कोठे में रखे हुए गेहूँ पता नहीं कैसे दिन-दिन कम होते चले जाते थे। यहाँ तक कि साल खत्म होते होते तो उसको फाके करने होते थे। उसने बार-बार अपनी इस खस्ता हालत पर विचार किया पर उसे कुछ समझ में नहीं आया। एक दिन उसके हाथ एक पोथी लग गयी। उस पोथी में बताया गया था कि यह गाँव चोरों की बस्ती है। यहाँ कुछ तो मेहनत करने वाले किसान रहते हैं और बाकी चोर। चोर इतने होशियार और चालाक हैं और किसानों की मेहनत से उगाये हुए गेहूँ इस हिकमत से चुरा लेते हैं कि किसानों को कुछ पता नहीं लगता। वे बिचारे उन्हें अपने नेक पड़ोसी ही समझते हैं, जो वक्त जरूरत उनकी मदद करते हैं। किताब पढ़ते ही किसान की आँखें खुल गयी। अब उसे अपनी मुफलिसी का राज समझ में आया। तो यह सब लोग जो मेरे पड़ोस में रहते हैं और हम से हमदर्दी जताते हैं, चोर हैं। ये ही मेरा गेहूँ किसी हिकमत से चुरा लेते हैं। उसने मन-ही-मन इन चोरों की बस्ती को छोड़ किसी भले आदमियों की बस्ती में जा बसने का इरादा कर लिया।

इस बार जब वह खेत से फसल काटकर अपने घर लाया तो उसका मन अपने बुद्धिमानी भरे इस इरादे पर बेहद खुश था। एक दिन बड़े सबेरे उसने अपनी गाड़ी जोती और अपनी घर-भर की कमाई उस पर लाद कर चल पड़ा। चलते-चलते शाम हो आयी, पर अभी तक उसे कोई

कहीं नजर नहीं आयी। उसे मन-ही-मन डर लगने लगा कि कहीं उस पर हमला न कर दे। अभी उसे सामने से एक रोशनी का पुंज आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया। पास आने पर मालूम हुआ कि वह बीड़ी पीता हुआ आदमी था। उसकी बीड़ी का जलता हुआ छोर अंधेरे चमक रहा था। किसान ने उससे पूछा 'तुम कौन हो और कहां जा रहे हो? तुम्हारे मुँह में यह सुलगती हुई चीज क्या है। उस आदमी ने बताया कि यह मशाल है जो भटके हुओं को रास्ता दिखाती है और मैं दीन दुखियों, गरीब मेहनतकशों का सेवक हूँ। उन्हें मेहनत करने वालों के स्वर्ग में ले जाता हूँ। किसान ने उस आदमी की ओर डर की नजर से देखा जो सुलगती हुई बीड़ी को मशाल कह रहा था। पर उस आदमी ने अपनी बगल से एक किताब निकाली और बीड़ी का एक कश खींचकर उसे बीड़ी के रोशनी में सामने कर दिया—देखो इस किताब में उस स्वर्ग के रास्ते का पूरा नक्शा दिया हुआ है, जहां कोई चोर नहीं बसता, केवल मेहनतकश किसान बसते हैं। उस किताब को देखते ही किसान को वह आदमी सचमुच में प्रकट हुए देवदूत सा लगने लगा, क्योंकि यह वही किताब थी, जिसमें किसान ने चोरों की बस्ती का वर्णन पढ़ा था। किसान ने उसे अपनी गाड़ी पर बिठाया और उसके साथ हो लिया। काफी रात गये वे लोग एक कँटीली झाड़ियों के बाड़े से घिरी बस्ती के दरवाजे पर पहुँच गये। बस्ती के पहरेदार ने गरीबों के सेवक को देखते ही उन्हें बेरोकटोक भीतर जाने दिया। किसान के बस्ती में पहुँचते ही लोग अपने-अपने घरों से निकल आये और "इन्कलाब जिन्दाबाद" के नारे लगाते हुए उसकी गाड़ी से एक-एक बोरा गेहूँ अपनी-अपनी पीठ पर रखकर ले जाने लगे। किसान ने चकित होकर सेवक से पूछा—यह क्या? तुम तो कह रहे थे मैं तुम्हें गरीबों के स्वर्ग में ले जा रहा हूँ—जहाँ कोई भूखा, कोई नंगा नहीं रहता, पर लगता है तुमने मुझे धोखा दिया है, शायद तुम मुझे लुटेरों की बस्ती में ले आये हो। उसकी यह बात सुनकर बस्ती के एक आदमी ने उसके कंधों पर हाथ रखकर कहा—नहीं दोस्त तुम ठीक गरीबों के स्वर्ग में ही आ पहुँचे हो, यहाँ न तो कोई चोर है न लुटेरा सिर्फ मेहनत करने वाले गरीब रहते हैं या उनकी सेवा करने वाले सेवक हम सब लोग तुम्हारे सेवक हैं, अब तुम्हें किसी बात की चिन्ता करने

की जरूरत नहीं। निश्चिन्त होकर खेत जोतो और भरपेट खाना खाओ। यहाँ कोई भूखा नहीं मरता, इसलिए किसी को अपने घर में गेहूँ रखने और उनकी रखवाली करने की जरूरत नहीं। उनकी साज-सँभाल हम कर लेंगे। तुम चलकर आरामघर में आराम करो। और यह कहते हुए उसने किसान की गाड़ी का एक बैल खोल लिया। लेकिन मेरा बैल क्यों ले जा रहे हो, किसान हड़बड़ा कर बोला—हाय मैं लुट गया—मेरा सारा गेहूँ, मेरा बैल। तभी एक दूसरा सेवक सामने आया और डाँटने के स्वर में बोला—ऐसा लगता है कि चोरों की बस्ती में रहते-रहते तुम भी चोर हो गये हो, जो गाड़ी-बैल की चिन्ता कर रहे हो। तुमसे एक बार कह दिया न इस बस्ती में आने वाले हर एक के खाने-पीने, रहने-सहने की चिन्ता करना हमारा काम है। आखिर हमने यह स्वर्ग तुम्हीं लोगों के भले के लिए तो बसाया है—तुम जाकर आराम करो और उसने गाड़ी का दूसरा बैल खोल लिया और अपने घर की ओर चला। किसान बिचारा बड़ी मुश्किल में फँसा। चुपचाप पहले वाले मार्ग-दर्शक सेवक के साथ आगे बढ़ा। बस्ती का आरामघर एक बहुत बड़ा झोंपड़ा था। उसमें रोशनी के लिए कई लालटेनें लटक रही थीं। सामने एक लकड़ी की ऊँची-सी वेदी बनी थी, जिस पर चोरों की बस्ती का वर्णन करने वाली वही किताब पड़ी थी और उस पर फूलों की कई मालाएँ चढ़ाई हुई थीं। किसान की आँखें उस किताब को देखते ही चमक उठीं। तो यह लोग इस नेकी के फरिश्ते की किताब की पूजा करते हैं। जरूर ही मुझे कुछ गलतफहमी हो गयी थी। यह गरीबों का स्वर्ग ही होगा, नहीं तो इस किताब की पूजा लोग क्यों ये करने लगे? मुझे अपनी गेहूँ लदी गाड़ी की चिन्ता छोड़ देनी चाहिए। सचमुच ही चोरों की बस्ती में इतने साल रहने के कारण ही मेरा मन इतना छोटा हो गया है। आखिर यहाँ सभी तो मेरे गरीब किसान भाई हैं, गेहूँ मैंने खाया तो क्या और इन्होंने खाया तो क्या। यही सब सोचते-सोचते वह सो गया।

एक सेवक की जोरदार झिड़की सुनकर वह उठा। उठोगे भी या सूअर की तरह पड़े ही रहोगे। भागो, जल्दी से काम पर जाओ, सब लोग जा चुके। किसान आँखें मसलते हुए उठा और आँखें फाड़े उस सेवक को और देखने लगा—तुम गरीबों के सेवक हो या यमदूत? देखते नहीं मैं मेहनत-

कशो के स्वर्ग मे आया हूँ, क्या थोडी देर आराम की नींद सो भी नहीं सकता? सेवक ने अपनी बडी-बडी मूँछें उमेठने हुए कहा—स्वर्ग के पिल्ले जल्दी काम पर चल, नही तो हटर मे चमडी उघेड़ दूंगा। क्या तूने इसे हराम खोरो की बस्ती समझ लिया है। लेकिन भाई, किसान नरम होते हुए बोला—मुझे कुछ नाश्ता-वास्ता तो दो, रात मे भूखा हूँ। सेवक गुर्राया-नाश्ता खेत पर ही मिलेगा, दो घटे काम करने के बाद। यहाँ का यही नियम है, समझे! और उसने अपना हटर फटकारा।

किसान सहमा हुआ-सा खेत की ओर चल दिया। वहाँ उसके जैसे अनेक किसान हल जोत रहे थे, लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सब लोग अपने-अपने कंधो पर हल रखे हुए खेत जोत रहे थे। उसने एक किसान से पूछा—क्यो भाई, किसानो के इस स्वर्ग मे बैल नही है क्या? दूसरे किसान ने सहानुभूति से इस नये रंगरूट को देखा और ऊँचे स्वर में बोला, ताकि उसकी तरफ ताक रहा वह हटर वाला सेवक भी सुन ले—बैल थे, पर ज्यादा तर चोरो के साथ लड़ाई मे काम आये। सारे चोरों ने मिलकर इस बस्ती पर हमला कर दिया था, तब की बात है। अब जो थोड़े बहुत बैल बचे हैं वे इसलिए सुरक्षित रक्खे गये हैं कि फिर कभी चोरो से लड़ाई हो तो काम आएँ। आखिर लड़ाई तो होगी ही।

दो घटे की कड़ी मशक्कत के बाद जब नाश्ता बँटने लगा तो किसान ने देखा कि एक जौ की रोटी के साथ एक-एक प्याज सबको दिया जा रहा है। उसका मन पूछने को हुआ—गेहूँ की रोटी नही मिल सकती क्या? पर वह चुप रहा। रोटी खाकर जब वह पास के कुएँ पर पानी पीने गया तो उसने देखा सेवक लोग गेहूँ की चुपडी रोटियाँ उडद की दाल के साथ छक कर खा रहे थे। वह समझ गया कि गेहूँ का इस बस्ती मे क्या होना है।

रात को जब वह बस्ती के आराम घर मे लेटा था, पास लेटे एक दूसरे किसान से उसने पूछा—"क्यो भाई, कहने को तो यह स्वर्ग है, पर यहाँ भी किसानों को कम मशक्कत नही करनी पड़ती, ऊपर से जनसेवकों की फटकार। ये जन सेवक तो बिल्कुल चोरो की बस्ती के अफसरों जैसे ही अकड़ू हैं।"

"धीरे बोलो" पास लेटे किसान ने उसे टोका, "किसी जन सेवक ने सुन लिया तो तुम चोरों की बस्ती के दलाल बना दिये जाओगे और अंधेरी कोठरी में बंद कर दिये जाओगे, न यह खाने का आराम मिलेगा, न सोने का।"

"ऐसा क्यों ? क्या मैं जो सोच रहा हूँ वह तुम्हें नहीं बता सकता, क्या तुम मेरे ही किसान भाई नहीं हो ?" उसने अपना स्वर धीमा करके कहा।

"ठीक है। लेकिन इस स्वर्ग में न तो कोई खुद सोचता है और न जो सोचता है वह दूसरों को बता ही सकता है। क्योंकि सोचने का सारा काम जन सेवकों और उनके सरदार ने अपने ऊपर ले लिया है। वे हरदम सोचते रहते हैं, बहस करते रहते हैं और दुनिया भर में चोरों की बस्तियाँ खत्म करने और मेहनतकशों के स्वर्ग का राज फैलाने की योजनाएँ बनाते रहते हैं।"

"लेकिन यह बताओ, क्या ये जनसेवक वैसे ही नहीं हैं, जैसे चोरों की बस्ती के अफसर थे।" नये किसान ने लगभग फुसफुसाकर कहा। "उसी ठाट से रहते हैं, वैसे ही अकड़ते हैं।"

"नहीं", अनुभवी किसान बोला, "ये हमारे अपने हैं। हमीं इन्हें चुनते हैं। हमारी सेवा ही इनका काम है। जबकि वे चोरों द्वारा चुने जाते थे और उन्हीं की सेवा करते थे, आखिर हमारी भलाई के लिए ही तो ये अपनी जिन्दगी लगाये हुए हैं। ये न होते तो यह स्वर्ग बनता ही कैसे ? इन्हीं की और सरदार की ही ताकत है कि दुनिया भर की चोरों की बस्तियों से लोहा ले रहे हैं, नहीं तो कब का यह स्वर्ग उजड़ गया होता।"

"लेकिन" नये किसान ने कहा, "नेक फरिश्ते की किताब में तो लिखा है कि स्वर्ग में कोई अफसर न होगा, कोई सरदार न होगा, सब काम किसान खुद कर लेंगे।"

"यह नहीं मालूम, लिखा होगा, पर यहाँ कोई इस [illegible] किताब को पढ़ता नहीं है। इसकी पूजा होती है। अगर हर रोज इसे पढ़ने लगेंगे तो [illegible] कहाँ रहेंगे ? हाँ, नेक फरिश्ते का एक बेटा हुआ है। उसकी किताबें सब पढ़ी जाती हैं। उसने बताया कि नेक फरिश्ते ने [illegible] के लिए दी थी। वह सब दुनिया के बारे हैं, उसकी [illegible] हैं, [illegible]

भोले-भाले किसान बिचारे अंदर अपने स्वर्ग की व्यवस्था देख कर जाते हैं, उन्हें तब सेवकों की एक पूरी फौज चाहिए और इस फौज की खातिर एक मजबूत, कठोर सरदार। उसके बिना स्वर्ग दो मिनट में बिखर जायेगा। चोरों की जमात उसमें घुस जायेगी। देखो ना इतनी चौकसी और इंतजाम के बावजूद चोरों का कोई न कोई दलाल हर रोज इस बस्ती में घुस आता है।"

"कैसे घुस जाता होगा? इतनी कँटीली तो बाड़ है और इतना कठिन पहरा?"

"नहीं, बाहर से तो कोई नहीं घुस पाता, पर भीतर में ही कोई न कोई पैदा हो जाता है। गद्दारी सोचने लगता है। दूसरे किसानों को भड़काता है और जनसेवकों से बहस करने लगता है। यही है उसकी पहचान।" नया किसान सहम गया। वह सब तो वह भी करना चाहता था। कहीं सचमुच उसे चोरों का दलाल न समझ लिया जाये।

दूसरे दिन सुबह जब किसान लोग खेत पर काम करने जा रहे थे, रास्ते में एक आम के पेड़ पर एक कोयल बड़ी ही मीठी आवाज में कुहू कुहू! कर रही थी। चार-पाँच किसान ठिठक कर उसका मधुर गीत सुनने लगे। इतने में ही काफिले के साथ चलते हुए पहरेदार सेवकों में से एक उनकी तरफ बढ़ आया और चिल्लाया—चलो आगे बढ़ो। कोयल की नशीली आवाज के चक्कर में न पड़ो। यह चोरों की भोंपू है। पड़ोस की चोर बस्ती ने इसे खास-तौर से सिखा पढ़ा कर स्वर्ग में भेजा है ताकि यह अपनी मीठी आवाज से तुम लोगों को बहका कर काम से विमुख कर दे और हम लोग चोर बस्ती की होड़ में पिछड़ जाएँ। मैं अभी इसको मजा चखाता हूँ—यह कहते हुए उसने अपनी गुलेल निशाना साध कर चला दी। अपनी मस्ती में कुहू-कुहू करती हुई कोयल एक झटके में नीचे आ गिरी। जन सेवक ने दौड़कर तड़पती हुई कोयल को उठा लिया और उस की गरदन मरोड़ कर उसे वहीं ठंडा कर दिया। फिर वह मुस्कराकर बोला, चलो आज के नाश्ते का इन्तजाम हो गया और उसने कोयल के बेजान शरीर को अपने झोले में डाल लिया। किसानों का समूह सन्न रह गया।

"नहीं, यह बात नहीं", अनुभवी किसान बोला, "उस दिन जनसेवकों के पुरोहित ने एक प्रवचन दिया था, उसमें इसका कारण बताया था। वह कहता था कि सब लोग जो खेती करते हैं वे किसान नहीं हैं, मेहनतकश नहीं हैं। उनमें से कुछ वास्तव में मेहनतकश हैं और बाकी चोरों के दलाल हैं। देखने में वे किसान ही लगते हैं पर हैं चोरों के दलाल। इसलिए उनका इस बस्ती से निकल जाना ही अच्छा। तुम्हीं बताओ अगर वे पड़ोस की चोर-बस्तियों के दलाल न होते तो कैसी भी हालत में यहीं न रहते? कोई इस तरह अपना देश छोड़कर भागता है? चोर बस्तियों के दलाल न होते तो चोर बस्तियों में शरण लेने क्यों जाते? और अपने दिल में ही घुमना है। ये भी घुस गये। हमारे लिए अच्छा ही हुआ।"

नये किसान ने कुछ न कहा। वह चुपचाप सोचने लगा: मामला सचमुच बड़ा गड़बड़ है। स्वर्ग के नाम पर बसी हुई यह बस्ती वास्तव में लुटेरों की बस्ती है। ये लुटेरे उन्हीं चोरों के भाई हैं, जिन्हें मारकर भगा देने का ये स्वांग भरते हैं। दिखाने को ये एक दूसरे के दुश्मन हैं पर वास्तव में एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। दोनों की एक-दूसरे को गालियाँ देते रहते हैं, लड़ाई का माहौल बनाये रखते हैं, ताकि वे सिपाहियों के खर्चे के नाम पर दोनों बस्तियों में रहने वाले किसानों का पेट काटते रहें। किसानों का भला तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि वे खुद अपना सारा इंतजाम नहीं कर लेते। जब तक ये अफसर और जनसेवक बने रहेंगे, जब तक इन्तजाम का काम उनके हाथ में रहेगा, तब तक वे मेहनतकशों को दबाते रहेंगे। कभी आजादी के नाम पर तो कभी बराबरी के नाम पर। उसने फिर सोचा: पर मैं अगर इस बस्ती से परेशान होकर फिर पुरानी चोर बस्ती में चला जाऊं तो भी कुछ नहीं होने का। दोनों देख चुका हूँ। यहीं रहकर किसानों को अपनी बात बताऊँगा। उन्हें खुद सोचना और खुद अपना इंतजाम करना सिखाऊँगा। नेकदिल फरिश्ते ने ठीक ही लिखा था, स्वर्ग वहीं होगा जहाँ मेहनती लोग खुद अपना सारा इंतजाम कर लेंगे, जब तक कुछ लोगों का काम इंतजाम करना बना रहेगा, वे बाकी लोगों का खून चूसते रहेंगे। फिर चाहे वे अफसर कहलाएँ या सेवक। हालत में कोई

फर्क पड़ता। ये लोग कहते हैं, देखो हम सब मेहनतियों को भरपेट खाना देते हैं, चोर दस्नी मे मेहनती भूखो मरता है। ठीक है। एक तिहाई आबादी को स्वर्ग मे बसाने के नाम पर देश निकाला दे दो। एक दसवें हिस्से को मार दो। दूसरे दसवें को चोरो के दलाल कहकर अँधेरी कोठरियो में भूखे-प्यासे बद कर दो, तो बचे हुए लोगो को खाना देना कौन बहुत बड़ी बात है। वह भी उन्हे गुलामो जैसी हालत में रखकर ?

नहीं रहा, साड़ी-ब्लाउज़ पहने हुए दो आधुनिका लड़कियों को इन अर्धग्राम्य लोगों के छँटते हुए समूह में बड़ी सरलता से देखा जा सकता था। वे सचमुच नहीं आयीं। ज़रूर कोई न कोई गड़बड़ हुई है। बीच में कोई कनेक्शन नहीं मिला, कोई गाड़ी अप्रत्याशित रूप से लेट हो गयी या छूट गयी ? कुछ न कुछ महत्वपूर्ण कारण ज़रूर रहा होगा। सोम निढाल हो गया ? क्या मालूम वे कल आयें। पर क्या मालूम उन्हें किसी बहुत बड़ी मजबूरी में अपना कार्यक्रम ही रद्द कर देना पड़ा हो। ऐसा हुआ तो वह अपने अगले कई दिन कैसे गुज़ारेगा ? यों गुज़ारने को ज़िन्दगी के ये पच्चीस बरस अकेले ही गुज़ारे हैं। पर पिछले कुछ दिनों में बिन्दु के आने के कार्यक्रम को लेकर वह मानसिक कुछ इतना व्यस्त रहा है कि अब वह न आ पायी तो वह अपनी होने वाली वीरियत की गहराई को कूत भी नहीं पा रहा है। पर कमरे में लौटते ही बात साफ़ हो गयी। दरवाज़ा खोलते ही फ़र्श पर बिन्दु का एक पत्र पड़ा मिला। धड़कते दिल से खोला। छुट्टियाँ 15 से होने की बजाय अब 16 से हो रही हैं, इसलिये अब 16 की सुबह ही हम लोग पहुँच सकेंगी। जानती हूँ कार्यक्रम के इस परिवर्तन से आप बोर तो बहुत होंगे, पर पहुँच कर आपकी सारी वीरियत मिटा देने की पूरी कोशिश करूँगी। यह वाक्य पढ़ते-पढ़ते उसके सारे जिस्म में एक फुरहरी-सी दौड़ गयी। पर बीच में पूरा एक दिन था। पूरा दिन और पूरी रात। अब मैं कुछ नहीं करूँगा, उसने तय कर लिया। ओढ़ने की चादर समेट कर नहीं रखूँगा। कुछ भी नहीं। उन लोगों के स्वागत की जो कुछ तैयारी आज कर चुका हूँ, उसे ज्यों का त्यों रखूँगा। बस, सारे दिन लेटा रहूँगा और सोचता रहूँगा। सोचता और याद करता। याद करता, बिन्दु के साथ बिताये हुए पिछले दो वर्षों के वे सारे क्षण। और पूरा दिन उसने इसके सिवा सचमुच कुछ नहीं किया। अख़बार तक नहीं पढ़ा। जानकर पूरा दिन यों ही काट दिया—एक सज़ा की तरह। कभी लेट कर और कभी बैठ कर। कभी पंखा चला कर और कभी बन्द कर। कभी पानी पी कर और कभी बाथरूम जा कर।

खरबूजे

वह एक ही जगह खड़ा हुआ रुकती हुई गाड़ी के एक-एक डिब्बे को अपने सामने से निकलते हुए देखता रहा। उसे पूरा विश्वास था कि बिन्दु जरूर किसी डिब्बे की खिड़की से बाहर मुँह निकाले हुए या दरवाजे पर खड़ी हाथ हिलाती हुई दिखाई देगी। इसीलिये उसने प्लेटफार्म पर एक जगह खड़े हुए ही रुकती हुई गाड़ी को देख लेना उचित समझा। पर जब सारी गाड़ी सामने से निकल गयी और उसे बिन्दु या उमा कोई भी दिखाई न दी, तब वह थोड़ा निराश हुआ। अब उसने अपने सामने रुके हुए गाड़ी के सबसे पिछले डिब्बे से खिड़कियों के भीतर झाँक-झाँक कर एक-एक डिब्बा देखना शुरू किया। हो सकता है उन लोगों को स्टेशन आ जाने का ठीक अन्दाज न हो पाया हो और अब वे किसी डिब्बे के भीतर जल्दी-जल्दी अपना सामान सम्भाल रही हों। पर नहीं। एक-एक डिब्बे को पार करते हुए वह इंजिन तक पहुँच गया। लेकिन उनमें से कोई भी न तो डिब्बे से उतरती हुई और न भीतर ही दिखाई दी। स्पष्ट ही वे नहीं आयी थीं। पर उसका मन मान नहीं रहा था—ऐसा तो कतई नहीं होना चाहिए। यदि यह वास्तव में हो ही गया तो मेरा मन बहुत खट्टा हो जाएगा, उसने सोचा, जैसे वास्तव में ऐसा होने में अब भी बहुत कुछ शेष हो। हाँ, शेष था। हो सकता है हड़बड़ाहट और चिन्ता के कारण वह उन्हें किसी डिब्बे से उतरते हुए देख न पाया हो। वह भारी कदमों से गेट पर खड़े टिकिट कलेक्टर के पास जाकर खड़ा हो गया और एक-एक व्यक्ति को जाते हुए देखता रहा। पाँच-सात मिनिट में ही भीड़ छँट गयी। प्लेटफार्म पर बचे हुए विरल लोगों में कोई जनाना चेहरा तक शेष

नहीं रहा, साड़ी-ब्लाउज पहने हुए दो आधुनिका लड़कियों को इन अर्धग्राम्य लोगों के छूटते हुए समूह में बड़ी सरलता से देखा जा सकता था। वे सचमुच नहीं आयीं। जरूर कोई न कोई गड़बड़ हुई है। बीच में कोई कनेक्शन नहीं मिला, कोई गाड़ी अप्रत्याशित रूप से लेट हो गयी या छूट गयी? कुछ न कुछ महत्वपूर्ण कारण जरूर रहा होगा। सोम निढाल हो गया? क्या मालूम वे कल आयें। पर क्या मालूम उन्हें किसी बहुत बड़ी मजबूरी से अपना कार्यक्रम ही रद्द कर देना पड़ा हो। ऐसा हुआ तो वह अपने अगले कई दिन कैसे गुजारेगा? यों गुजारने को जिन्दगी के ये पच्चीस बरस अकेले ही गुजारे हैं। पर पिछले कुछ दिनों में बिन्दु के आने के कार्यक्रम को लेकर वह मानसिक कुछ इतना व्यस्त रहा है कि अब वह न आ पायीं तो वह अपनी होने वाली बोरियत की गहराई को कूत भी नहीं पा रहा है। पर कमरे में लौटते ही बात साफ हो गयी। दरवाजा खोलते ही फर्श पर बिन्दु का एक पत्र पड़ा मिला। धड़कते दिल से खोला। छुट्टियाँ 15 से होने की बजाय अब 16 से हो रही हैं, इसलिये अब 16 की सुबह ही हम लोग पहुँच सकेंगी। जानती हूँ कार्यक्रम के इस परिवर्तन से आप बोर तो बहुत होंगे, पर पहुँच कर आपकी सारी बोरियत मिटा देने की पूरी कोशिश करूँगी। यह वाक्य पढ़ते-पढ़ते उसके सारे जिस्म में एक फुरहरी-सी दौड़ गयी। पर बीच में पूरा एक दिन था। पूरा दिन और पूरी रात। अब मैं कुछ नहीं करूँगा, उसने तय कर लिया। ओढ़ने की चादर समेट कर नहीं रखूँगा। कुछ भी नहीं। उन लोगों के स्वागत की जो कुछ तैयारी आज कर चुका हूँ, उसे ज्यों का त्यों रखूँगा। बस, सारे दिन लेटा रहूँगा, और सोचता रहूँगा। सोचता और याद करता। याद करता, बिन्दु के साथ बिताये हुए पिछले दो वर्षों के वे सारे क्षण। और पूरा दिन उसने इसके सिवा सचमुच कुछ नहीं किया। अखबार तक नहीं पढ़ा। जानकर पूरा दिन यों ही काट दिया—एक सजा की तरह। कभी लेट कर और कभी बैठ कर। कभी पंखा चला कर और कभी बन्द कर। कभी पानी पी कर और कभी बाथरूम जा कर।

दूसरे दिन सुबह जब वह उठा, अकर्मण्यता का वह परिवेश टूट चुका था। उसने एक गिलास पानी मे एक नीबू निचोड़ कर पिया और शौच के लिए चल दिया। ब्रश किया और दूध गरम कर इतमीनान से उसमे अण्डा घोलने लगा। आज सब कुछ निश्चित था। और तीन ही चार घण्टे बाद। अब कोई बाधा नही। कोई आशंका नही। 'क्या मालूम कहीं कुछ हो न जाये' की आशका अब भी उसने अपने भीतर महसूस की। और उसके सारे शरीर मे सकुचन की एक लहर सी व्याप गयी। सीने मे एक खाली-खालीपन सा उभर आया। जैसे पहाड़ मे उतरती हुई बसों को दो-तीन घण्टे की यात्रा के बाद कभी-कभी उभर आता है। पर कुछ ही क्षणो मे उसने अपनी इस आशका पर नियन्त्रण पा लिया। आज फिर वह कल सवेरे की तरह ही उनके स्वागत की तैयारी करने लगा। कमरे का सामान कुछ इधर-उधर किया। कुछ फालतू-सा लगने वाला सामान छत की सीढियों मे रखा। छोटा-सा कमरा सामान से अटा पड़ा था। एक ही खाट उसमे बिछ सकती थी, दूसरी उसने कल से ही बाहर के बरामदे मे जमा रखी थी। उसकी चादर ठीक की, और दस बजने का इन्तजार करने लगा।

स्टेशन पर पहुँचते ही उसे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आज गाड़ी समय पर आ रही थी। पूरे साढ़े दस बजे प्लेटफार्म बिल्कुल साफ था। बरसात के बाद के धुले-धुलेपन की एक चमक चेहरे पर थी। एक क्षण उसे लगा—ऐसे सुहाने मौसम मे, ऐसे खुले-खुले, साफ-साफ प्लेटफार्म पर ऐसी प्रतीक्षा वह अनन्तकाल तक कर सकता है। पर नहीं। पूरे सुहानेपन के बावजूद यदि वह गाड़ी पन्द्रह मिनट भी लेट होती, वह भयभर का

रुकी और बिन्दु के पीछे अपनी अटैची सँभालती हुई उमा दिखाई दी। साँवला, बड़ी-बड़ी आँखों वाला तराशा हुआ सा चेहरा। सोम ने पहले उसी को अभिवादन किया—पूरे चौबीस घण्टे बोर किया है आप लोगों ने। उसने शिकायत के एक हल्के से स्वर में कहा, जो उन्मुख तो उमा की ओर था, पर टकरा बिन्दु से रहा था। बिन्दु का चेहरा माफ़ी माँगती हुई सी एक व्यथित छाया से ग्रस्त हुआ। सोम को अपने पहले ही वाक्य पर हल्का पछतावा-सा हुआ और उसने बिन्दु का गाल हल्के से थपथपा कर उसे उस छाया से मुक्त किया।

"साल भर में किसी भी प्रकार के नारी-स्पर्श से वंचित इस कमरे में आपका स्वागत है," सीढ़ियाँ चढ़कर ज्यों ही वे कमरे के पास पहुँचे, उसने कहा और ताला खोलने लगा। बिन्दु बरामदे में बिछी हुई खाट पर धम्म से बैठ कर साँस लेने लगी और उमा पास ही खड़ी उसे ताला खोलते हुए देखती रही।

अपनी दोनों अटैचियाँ और ट्रांजिस्टर कमरे में रख देने के बाद जब वे दोनों अन्दर बिछी खाट पर बैठ चुकीं, तो सोम भी उनके पास आ कर बैठ गया। बिन्दु उसके पास थी, उसके बाद उमा। उसने बिन्दु की गोद में कुहनी रखते हुए अपना हाथ उमा की ओर बढ़ा दिया और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—

"कहिये उमाजी, आपको यात्रा में कोई कष्ट तो नहीं हुआ?"

"नहीं, सब ठीक ही रहा", उमा ने एक ऐसी नज़र से उसकी ओर देखा, जिसमें थोड़ा सा संकोच था और काफ़ी मात्रा में सहजता। उसका हाथ उमा के हाथ में रेंगता रहा और उमा ने अपना हाथ हटाने की कोई कोशिश नहीं की।

बिन्दु ने अपने पिछले पत्र में उसे लिखा था—मेरा अकेले आपके पास आकर कुछ दिन रहना न तो आपके यहाँ के परिवेश को रुचता होगा और न आसपास मिलने पर मेरे परिवेश को ही। मैं अपनी सहेली उमा को भी राज़ी और साथ चलने का लोभ दे कर साथ ला रही हूँ। उसके साथ होने से सब कुछ सहज हो जायेगा। हमारा आपके पास दो-चार दिन रहना, इधर-उधर घूमना, सब कुछ। हाँ, उसके

हमारी दोस्ती निभ जायेगी, क्यों ? और वह चुप रही थी, एक अनिश्चय के भाव से।

उसका हाथ सहलाते हुए वह सोच रहा था कि उसके साथ अपने व्यवहार को वह पूरा सम्मानपूर्ण और फिर भी स्नेह भरा बनाये रखेगा, ताकि वह बोर न हो। और बिन्दु उसकी ओर एक दबी हुई प्रशंसा के भाव से देख रही थी। बाद मे उमा के बाथरूम जाने पर उन्होंने दो-तीन गहरे-गहरे चुम्बन लिये और बिन्दु ने उसकी गोद मे सिर रखे हुए मचलते से स्वर मे कहा : आपने तो शुरू मे ही उस पर जादू-सा कर दिया है। आज तक मैंने उसे किसी मर्द के हाथ में अपना हाथ इतने सहज ढंग से पड़ा रहने देते नहीं देखा। अपने भाई तक का हाथ वह जल्दी ही झटक देती है। "झटक कैसे देती, तुम्हारी गोद मे मैं हो कर जो गया था", सोम ने मुस्कुराते हुए कहा। 'देखो भाई, हम अपनी ओर से तुम्हारी सहेली को बोर होने का कोई मौका नहीं देंगे, फिर भी वह हो तो उसकी ऐसी-तैसी। क्यों ठीक है न ?'

"बिल्कुल ठीक है, मेरे प्राण।" उसने उसके चेहरे को अपनी गलबहियों मे उसी की गोद मे पड़े हुए अपने चेहरे की ओर झुकाते हुए कहा— "लेकिन उसके सामने मुझे चूमने-चाटने मत लगना।"

"क्यों, उसकी जान जल जायेगी ?" सोम ने परिहास के स्वर मे कहा।

"जल नहीं जायेगी, वह मेरी जान खा लेगी, बार-बार पूछेगी 'तेरे सामने तुम्हारी इतनी हिम्मत कैसे हुई ? जैसे मैं कुछ हूँ ही नहीं। मैं आज ही वापस जा रही हूँ, तुम लोग मजे से एक दूसरे की बाहों मे पड़े रहो।'

"अच्छा खैर, नहीं चूमूँगा।"

दूसरे दिन सुबह जब सोम दौरे के लिये रवाना हुआ था, बिन्दु ने स्नेह से उमा को अपनी बाँहों मे समेटते हुए पूछा—क्यों कैसा लग रहा है ? बोर तो नहीं हो रही हो ?

रहने में आपको थोड़ी मुश्किल तो होगी पर आप अपनी गुंजाइश मौके-बे-मौके कभी निकाल ही लेंगे, यह मैं जानती हूँ। पर एक बात बता दूँ। वह बड़ी स्वाभिमानी और एकदम नैतिकतावादी लड़की है। आपकी हमारी भावनावादिता से प्रभावित नहीं होने वाली। ऐसी स्थिति में हमारा आपके यहाँ प्रवास आपके लिये भी और उसके लिये भी सुखद रहे इसके लिये आपको उसके स्वाभिमान का थोड़ा ध्यान रखना होगा। वह कह भी रही थी—तुम दोनों के बीच में वहाँ क्या करूँगी। तुम लोग तो आपस में मस्त रहोगे। मैं अकेली बोर हो जाऊँगी। मेरे साथ के अपने मैत्री सम्बन्धों में कम से कम वह अपनी जरा भी उपेक्षा नहीं सह पाती। वैसे तो कोई बात नहीं, पर इस यात्रा में अगर वह बोर हुई तो न केवल मैं उससे आजकल की तरह घण्टों आपकी चर्चा नहीं कर सकूँगी, बल्कि वर्तमान सौहार्द्र के साथ उसके साथ मेरा रहना ही मुश्किल हो जायेगा। इसलिए वहाँ आप उसकी बिल्कुल उपेक्षा मत कीजियेगा, पूरी लिफ्ट दीजियेगा।

साल भर से वे लोग अलग-अलग स्थानों पर थे। उसका ट्रान्सफर यहाँ हो गया था और उसने पढ़ाई समाप्त कर मेरठ में नौकरी कर ली थी। वहीं उसका परिचय उमा से हुआ था। उमा उसी कॉलेज में पढ़ाती थी और दो साल पहले से वहाँ थी। बिन्दु ने उमा के साथ ही रहना शुरू कर दिया। उमा के थोड़े अभिमानी और छोटी-छोटी बातों के प्रति भी बहुत संवेदनशील स्वभाव के बावजूद बिन्दु अपनी विनम्रता और सहनशीलता के कारण उसके साथ एडजेस्ट कर लेती थी। साल भर में स्थिति यह हो गयी कि उमा के लिये बिन्दु का साथ अपरिहार्य हो गया। उससे लड़ लेती तो वह खुद ही बहुत दुखी हो जाती।

सोम एक बार मेरठ उतरा था। सिर्फ सुबह से शाम तक के लिये। जिस परिवेश में वे लोग थीं, वहाँ रात रहना उनको पड़ोसियों की नजरों में सदिग्ध स्थिति में डाल देता। उमा ने जब अपनी बड़ी-बड़ी आँखों की हर क्षण तेजी से झपकती रहने वाली पलकों से उसका स्वागत किया था, तब उसने कहा था—आपको पहली बार देख कर ही लगता है, आपकी

हमारी दोस्ती निभ जायेगी, क्यों ? और वह चुप रही थी, एक अनिश्चय के भाव से।

उसका हाथ सहलाते हुए वह सोच रहा था कि उसके साथ अपने व्यवहार को वह पूरा सम्मानपूर्ण और फिर भी स्नेह भरा बनाये रखेगा, ताकि वह बोर न हो। और बिन्दु उसकी ओर एक दबी हुई प्रशंसा के भाव से देख रही थी। बाद में उमा के बाथरूम जाने पर उन्होंने दो-तीन गहरे-गहरे चुम्बन लिये और बिन्दु ने उसकी गोद में सिर रखे हुए मचलते से स्वर में कहा : आपने तो शुरू में ही उस पर जादू-सा कर दिया है। आज तक मैंने उसे किसी मर्द के हाथ में अपना हाथ इतने सहज ढंग से पड़ा रहने देते नहीं देखा। अपने भाई तक का हाथ वह जल्दी ही झटक देती है। "झटक कैसे देती, तुम्हारी गोद में से होकर जो गया था", सोम ने मुस्कुराते हुए कहा। 'देखो भाई, हम अपनी ओर से तुम्हारी सहेली को बोर होने का कोई मौका नहीं देंगे, फिर भी वह हो तो उसकी ऐसी-तैसी। क्यों ठीक है न ?'

"बिल्कुल ठीक है, मेरे प्राण।" उसने उसके चेहरे को अपनी गलबहियों में उसी की गोद में पड़े हुए अपने चेहरे की ओर झुकाते हुए कहा— "लेकिन उसके सामने मुझे चूमने-चाटने मत लगना।"

"क्यों, उसकी जान जल जायेगी ?" सोम ने परिहास के स्वर में कहा।

"जल नहीं जायेगी, वह मेरी जान खा लेगी, बार-बार पूछेगी 'मेरे सामने तुम्हारी इतनी हिम्मत कैसे हुई ? जैसे मैं कुछ हूँ ही नहीं। मैं आज ही वापस जा रही हूँ, तुम लोग मजे में एक दूसरे की बाहों में पड़े रहो।'

"अच्छा खैर, नहीं चूमूँगा।"

दूसरे दिन सुबह जब सोम शौच के लिये गया हुआ था, बिन्दु ने स्नेह से उमा को अपनी बाँहों में समेटते हुए पूछा—क्यों कैसा लग रहा है ? बोर तो नहीं हो रही हो ?

"नहीं" धीमे से स्वर में उमा बोली, "ऐसी तो कोई बात नहीं है, पर रात को जब तुम लोग मुझे बरामदे में अकेला छोड़ कर छत पर चले गये, मुझे बहुत डर लगा था। बिल्कुल अजनबी जगह है, ऐसे छोड़ कर मत चली जाया करो।"

"तो तुम जग रही थी। हमने तो देखा कि तुम गहरी नींद सो रही हो। नहीं तो तुम्हें भी ले चलते।" रस-विह्वल आँखों के एक कटाक्ष से उसकी ओर देखते हुए बिन्दु ने कहा और तत्काल गम्भीर हो गयी : "तुम जाग रही थी तो तुम्हें इसका कुछ आभास दे देना चाहिए था। मुर्दे की तरह क्यों पड़ी थी, जब मैं तुम्हारे पास से उठ कर गयी ?"

"बाद में जब डर लगा तो एक बार तो मैंने सोचा कि मैं भी ऊपर चली जाऊँ। पर फिर हिचकी कि कहीं तुम लोग किसी आक्वर्ड पोजीशन में न होओ। इतनी देर तुम लोग क्या करते रहे ?"

"बातें, और क्या ?" बिन्दु ने कहा।

"बातें क्या तुम लोग मेरे सामने नहीं कर सकते, आखिर बाद में तुम मुझे सब बता तो देती ही हो।"

"यही तो बात है। तुम्हें मैं उनसे की हुई हरेक बात बता सकती हूँ, पर वही बात तुम्हारे सामने उनसे सहजभाव से नहीं कर सकती। प्रेम के क्षेत्र में गोपनीयता की अब शायद यही एकमात्र दीवार है, जिसे मैं लाँघ नहीं पायी हूँ। बाकी जो कुछ होता है, बता तो तुम्हें देर-सबेर सब देती ही हूँ।"

शाम को उन लोगों ने नदी पर जाकर नहाने का कार्यक्रम बनाया। एक रिक्शा किया गया, बिन्दु और उमा उसमें बैठीं और सोम अपनी साइकिल पर साथ हो लिया। नदी तट पर रिक्शेवाले को छोड़ दिया गया। नदी बाढ़ पर थी। पानी किनारे की चट्टानों के ऊपर से बह रहा था। घाट-बाट का कहीं कुछ पता नहीं था। मटमैला बरसाती पानी उमड़ता हुआ, चट्टानी कगारों से टकराता हुआ और जगह-जगह भँवरें बनाता हुआ शोर करता चला जा रहा था। एक चट्टान पर उन लोगों

ने कपड़े उतारे। कपड़े, यानी, सोम ने कमीज और पेण्ट दोनों, बिन्दु ने केवल साड़ी और उमा ने कुछ भी नहीं। वह पूरे कपड़े पहने हुए ही पानी में उतरने के लिये तैयार हो गयी। सोम ने उसे रोका : बाढ़ की नदी में पता नहीं कहाँ चट्टान के बीच गड्ढ हों, पहले मुझे उतर कर देख लेने दो। वह सँभल कर उतरा और किनारे के पास-पास की आठ-दस गज चट्टानी जमीन टटोल कर उसने उन लोगों के लिये एक लक्ष्मण-रेखा-सी खींच दी। 'यहाँ-यहाँ तक तुम लोग निर्द्वन्द्व विचरण कर सकती हो' सीने तक पानी में डूबे हुए सोम ने कहा। बिन्दु एक झपाट मार कर उसके पास पहुँच गयी—"हम तो बस आपके पास ही विचरण करेंगे" और उसने सोम के एक कन्धे पर हाथ रख कर पानी में बच्चों की तरह उछलना शुरू कर दिया। उमा थोड़ी देर जहाँ उतरी थी, वहीं कमर तक पानी में डूबी हुई अपने मुँह पर छींटे डालती रही। बिन्दु ने उसकी ओर देखा और उछाल रोक कर कहा—तुम भी यहाँ आ जाओ उमा। उसको अपनी ओर बढ़ते देख कर सोम बिन्दु सहित थोड़ा आगे बढ़ गया और उसने उमा का बढ़ा हुआ हाथ पकड़ कर उसे एक झटके के साथ अपनी ओर खींच लिया। तेज़ी से पानी को चीरती हुई उमा की देहयष्टि सोम की दूसरी बाँह की लपेट में आ गयी। उसने हाथ छोड़ दिया और थोड़ी सी हिचकिचाहट के बाद अपने आप ही सोम की एक बाँह पकड़ कर बिन्दु की तरह ही डुबकियाँ लगाना शुरू कर दिया। "तुम लोगों ने तैरना क्यों नहीं सीखा ?" सोम ने दोनों ओर से दो युवती बालाओं से घिरी हुई अवस्था पर गौरव-सा महसूस करते हुए स्वर में पूछा। बिन्दु ही पहले बोली—"कॉलेज में सीखना शुरू किया था, पर तीन दिन स्वीमिंग पूल जाने के बाद ही एक लड़की डूब कर मर गयी। बस स्वीमिंग पूल फिर लगभग उस पूरे साल बन्द रहा। उन दिनों की ट्रेनिंग में इतना तैर सकती हूँ, उसने कोई गज भर दूर पानी की अजुरी डालते हुए कहा। अब उमा हीनता अनुभव करते हुए से स्वर में बोली—हमारे कॉलेज में तो कोई स्वीमिंग पूल था नहीं, और किसी ने कभी सिखाया ही नहीं।—इस बाढ़ पर आयी हुई नदी में तो सीखा नहीं जा सकता, तुम लोग चाहोगी तो

एक दिन हम लोग सारनाथ चलेंगे, वहाँ मैं तुम लोगों को दिखाने की कोशिश करूँगा, सोम ने कहा।

सूर्य डूब चुका था। पश्चिम के बादल उसकी लाली में नहाये थे। वातावरण में एक ठण्डक सी फैलने लगी। नदी का हहराता हुआ बहाव कुछ कुछ डरावना सा लगने लगा। सोम ने अपनी एक बाँह में किलोल करती हुई बिन्दु को पीठ और कंधों को लपेट लिया। उसकी आँखों में एक अजब समर्पण भाव छलक आया। सोम बिन्दु को अपनी एक बाँह में लपेटे हुए किनारे की ओर बढ़ कर पानी के भीतर ही उभरी हुई एक चट्टान की कुर्सी पर बैठ गया। और उसने बिन्दु को खींच कर अपनी एक जाँघ पर बिठा लिया। बिन्दु का पेटीकोट पानी में उन्मुक्त था। उसके निर्वसन नितम्बों का सीधा स्पर्श उसे बहुत सुखद लग रहा था। उमा पास ही खड़ी थी, जैसे काफी देर नहाने से थक गयी हो। सोम ने उसकी ओर हाथ बढ़ाया—आओ, तुम भी यहाँ आ जाओ, थोड़ी देर चुपचाप इस चट्टान पर बैठें। उमा ने बढ़ कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसके पास ही चट्टान पर बैठ जाने की कोशिश की। पर चट्टान की कुर्सी काफी छोटी थी, दो आदमी एक साथ उस पर टिक नहीं सकते थे। सोम ने भर्राई हुई सी आवाज में कहा, 'आओ तुम यहाँ आ जाओ, और वहीं बैठे हुए अपनी दूसरी जाँघ उसके नीचे की ओर कर दी। क्षण के एक छोटे से अंश की ठिठकन के बाद उमा उस पर बैठ गयी। सोम ने अपना दूसरा हाथ, जैसे सन्तुलन बनाने के लिये, उसके कन्धे पर रख दिया। कई क्षणों तक तीनों चुपचाप बैठे रहे, वातावरण की बढ़ती जा रही ठुरकन और अपनी भावनाओं की सिहरन से सिहरते हुए-से। एक ऐसी सिहरन जैसी लोग स्नान के बाद और कपड़े पहनने से पहले के क्षण में, पानी की ठण्डक और कपड़ों की गरमाइश के बीच समायोजन के क्षण में अनुभव करते हैं। सोम अपनी दो जाँघों के बीच सतुलित था—एक पर अपनी प्रिया के चिर-परिचित निर्वसन माँसल नितम्बों का स्पर्श तो दूसरी पर अभी कल तक नितान्त अपरिचित एक युवती बाला का पेटीकोट और साड़ी की दुहरी परतों से ढका हड्डियाला दबाव। साँझ की गहराती हुई कालिमा में एक क्षण उसे लगा कि वह कोई राजकुमार है—पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी का

कोई राजकुमार। तभी एक रेलगाड़ी शोर करती हुई पुल पार करने लगी और मन कुछ समाप्त हो गया। मन को लगा कि जैसे काफी देर हो गयी है। सोम ने कहा—अब चलना चाहिए।

बस रुकी। बिन्दु ने पूछा—खजुराहो आ गया क्या ? सोम ने और कण्डक्टर ने एक ही साथ जवाब दिया—हाँ। कण्डक्टर ने उतरते हुए यात्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा—जिनको हमारे साथ वापस जाना हो, वे सवा दो बजे तक आ जायें, बस ठीक ढाई बजे छूट जायेगी।

तो यह है खजुराहो। थोड़ी-थोड़ी दूर पर बने हुए, शताब्दियों की धूप और वर्षा से काले पड़े हुए पाँच-सात विशाल मन्दिर। गेट से भीतर घुसते ही एक गाइड साथ हो लिया। एक-एक मन्दिर दिखाने लगा। मन्दिरों के चारों ओर दीवारों पर बाहर और भीतर असंख्य मूर्तियाँ उत्कीर्ण। थोड़ी देर वास्तुशिल्प की कुछ विशेषताओं पर ध्यान देने के बाद बिन्दु ने दबी आवाज़ में सोम से पूछा—वे मूर्तियाँ कहाँ हैं, जिनके लिए खजुराहो प्रसिद्ध है। गाइड ने सुन लिया, बोला अभी दिखाता हूँ, साहब, पर इस मन्दिर में वे बहुत छोटी हैं, इसलिये आपको बैठकर देखना होगा। वह उन्हें भीतरी परिक्रमा के एक कुछ अँधेरे से कोने में ले गया और उत्कीर्णित छोटी-छोटी मूर्तियाँ दिखाने लगा। मन्दिर-दर-मन्दिर उन मूर्तियों का आकार बढ़ता गया और मन्दिर में उनका स्थान अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता गया। एक-एक करके [illegible] के [illegible] रूपों और कौशलों को चित्रित करने वाली अनेक मूर्तियाँ उन [illegible] ने देखीं।

खजुराहो की अपनी एक अलग ही दुनिया है, उज्ज्वल और कुतू-हलजनक। सोम को लगा जैसे आज के बड़े-बड़े [illegible] करते हुए [illegible] से [illegible] एक [illegible] हो [illegible] बाद [illegible] हो जाता है। [illegible]
[illegible]
[illegible]

बातों में भाग ले उठती, बल्कि कभी-कभार तो कोई छोटा-मोटा प्रश्न भी पूछ लेती। उमा अपेक्षाकृत चुप थी। पर प्रत्येक मूर्ति को ध्यान से देखती हुई, और गाइड की बातें सुनती हुई। अपनी साड़ी का एक पल्ला धूप से बचने के लिये उसने अपने सिर पर डाल लिया था। सोम को लगा जैसे इस तरह वह कुछ बिल्कुल भिन्न परिस्थितियों की धूप से भी बचने की कोशिश कर रही थी।

तालाब पर नहाने जाने का कार्यक्रम बन रहा था। सोचा गया कि क्यों न खाना भी वहीं किसी पेड़ की छाया में बैठ कर खाया जाये, पूरी पिकनिक रहे। रिक्शा किया गया। सोम अपनी साइकिल पर था। रास्ते में फलवाले की दुकान पर रुक कर सेब, केले और खीरे खरीदे गये। फिर हलवाई की दुकान से पूरी, सब्जी, समोसे और मिठाई। तीनों प्रसन्न थे। बिल्कुल पिकनिक का मूड था, उत्साह से भरा हुआ। हल्की सी बदली आकाश में छाई हुई थी। उसके कारण धूप सह्य लग रही थी। तालाब नगर से ज्यादा दूर नहीं था, यही कोई मील भर होगा। पेड़ों से छायी सड़क पर से गुजरना भला लग रहा था। आज दोनों लड़कियों ने तैरना सीखने के लिये विशेष तौर से कुर्ते और तंग मोरी के पाजामे पहन रखे थे।

तालाब काफी बड़ा था और उसके तीन तरफ थोड़ी-थोड़ी दूरी पर चौड़ी सीढ़ियों वाले घाट बने हुए थे। शुरू के घाटों पर कुछ लोग नहा-धो रहे थे। वे आगे बढ़ते गये और दूर के एक घाट पर जा उतरे, जहाँ आस-पास कोई भी नहीं नहा रहा था। पाँच-छह सीढ़ियों के बाद घाट में एक काफी चौड़ा पक्का प्लेटफार्म सा बना हुआ था, जिस पर पानी सोम की नाभि तक था। तैरने का अभ्यास करने के लिये यह आदर्श जगह थी। पहले सोम उतरा, फिर बिन्दु और तब उमा। सोम ने कहा—मैं बारी-बारी से तुम लोगों को यहाँ से वहाँ तक तैरने का अभ्यास करवाऊँगा। अपनी दोनों हथेलियाँ पानी में फैला कर पहले उसने बिन्दु को उन पर पेट के बल लिटा लिया और हाथ-पाँव चलाने के लिये कहा। वह सधे

हुए ढंग से हाथों और पाँवों से पानी काटने लगी। घाट के एक सिरे से दूसरे तक वह भी उसके साथ-साथ प्लेटफार्म पर चलता गया। दूसरे सिरे पर पहुँचते ही उसने उसकी देहयष्टि को मोड़ दिया। उसके गले में एक बाँह डाल कर बिन्दु ने मोड़ लिया। फिर उस किनारे से इस किनारे तक। इस बार बिन्दु ने अपनी कमीज ऊँची कर ली, सम्भवतः उसका तंग घेरा उसे तैरने में कठिनाई पैदा कर रहा था। और अपना नंगा पेट उसकी हथेलियों पर रख दिया। स्वच्छ पानी में उसका गोरा पेट झलक मारने लगा। सोम की एक हथेली उसके उरोजों के आसपास थी और दूसरी नाभि के नीचे। तैरते-तैरते दूसरी हथेली से उसने उसे थोड़ा-सा पेट दिया। उमा अब तक उसी प्लेटफार्म पर खड़ी हुई अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रही थी। बिन्दु ने उसकी ओर देखा और कहा—अब तुम तैरो उमा। सोम ने फिर उसी तरह दोनों हथेलियाँ पानी में फैला दीं। पर उमा उन पर अपना पेट टिका कर अपना सन्तुलन दो एक बार के प्रयत्न के बाद भी न बना पायी। वह मुँह के बल पानी में डूबने लगती। सोम को लगा कि उसका ऊपरी आधा शरीर नीचे के आधे शरीर से कहीं भारी है। उसने अपनी दोनों हथेलियों को एक-दूसरी से करीब एक फुट दूर कर लिया और कहा—अब आओ। दो जगह सहारा पाकर उसकी देह सीधी पानी में फैल गयी। सोम का ध्यान गया कि उसका पहला हाथ बिल्कुल उसके उरोजों पर था और दूसरा कमर पर। पर वहाँ पैडेड ब्रेजियर के कड़े स्पर्श के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। हाथ पैर चलाओ, सोम ने कहा। पर उमा हाथ-पैर चलाते समय फिर-फिर अपना सन्तुलन खो देती। सोम ने बिन्दु की ओर देखा। वह पास ही खड़ी पानी से खेल रही थी। सोम से नजर मिलते ही वह अर्थ-भरी दृष्टि से मुस्कराई—थोड़े अभ्यास के बाद ही उमा अपने शरीर को पानी में साध पायेगी, प्रयत्न करते रहिये। अपनी हथेलियों को उसके शरीर के स्थान बदलते हुए "सेन्टर आफ ग्रेविटी" के साथ समायोजित करते हुए कुछ क्षण बाद सोम का एक हाथ बिल्कुल उसकी दोनों जाँघों के बीच के हिस्से पर चला गया। यद्यपि किसी मांसल आकार का कोई आभास उसे वहाँ नहीं हुआ, कुर्ते और पाजामे की दो गीली पर्तों के पार उसका हड्डियालापन ही उसे छूता

रहा, पर उसे लगा कि यह अति हो गयी है। घाट के उस छोर पर पहुँचने के बाद उमा किसी न किसी बहाने से तैरने का यह अभ्यास निश्चय ही बन्द कर देगी। ऐसी स्थिति के बाद कोई भी लड़की लौट पड़ेगी, जब तक कि उसने बिल्कुल ही अन्त तक जाने का निश्चय न कर लिया हो। और उसका दिल धुकधुकाने लगा। उसने यहाँ हाथ रख कर अच्छा नहीं किया। वह सोचने लगा। वह सारा सुखद और स्नेहपूर्ण वातावरण जो इन तीन प्राणियों के बीच पिछले कुछ दिनों में बना हुआ था अब कुछ ही क्षणों में टूटने वाला है। इन लोगों के प्रवास को सुखद बनाये रखने के प्रयत्नों में ही वह उस सीमा को लाँघ गया था, जहाँ एक क्षण में सुखदता दुखदता में बदल जाती है। यह अच्छा नहीं हुआ, वह मन ही मन पछताने लगा। घाट का छोर आ गया था। सोम ने उसी अवस्था में उसकी दिशा बदलने के लिये एक मोड़ दिया, उमा ने उसकी आशंकाओं के एकदम विपरीत, एकाएक बिन्दु की तरह एक बाँह उसके गले में डाल दी और लटक गयी। फिर भी उसे लगा कि शायद सन्तुलन बिगड़ने से अनचाहे ही उससे ऐसा हो गया हो। पर नहीं, वह कह रही थी—अब थोड़ा सा आया, दो तीन चक्कर यहाँ से वहाँ तक के लगवाइये तो मैं बिन्दु जितना तो सीख ही जाऊँगी। उसकी जान में जान आयी। तो उसकी सारी आशंकाएँ निर्मूल थी। अपने अलघ्य प्रदेश पर विचरण कर आने वाले हाथ का उसने बुरा नहीं माना था।

बिन्दु आज बहुत मस्त हो रही थी। उसके मन की प्रसन्नता और तुष्टि जैसे तन की शोखी और चचलता बनकर व्यक्त हो रही थी। कोई साल भर बाद वे लोग साथ-साथ जलक्रीडा कर रहे थे। उसे सहस्रधारा याद आने लगी। पर आज का मजा और ही था। हर उछल-कूद और तैराकी के हर प्रयत्न के बाद वह कोई न कोई बहाना करके सोम से लिपट जाती थी। दो एक बार उसने पानी के भीतर ही उसके उद्दीप्त पौरुष को दबा भी दिया था। आज उसे अपनी हरकतों के उमा द्वारा देखे जाने की भी जैसे कोई परवाह न थी। वह विशुद्ध मस्ती के आलम में थी। उसे याद आया कि वे लोग कैमरा साथ लाये हैं। उमा से बोली—उमा हम लोगों का सग-संग स्नान करते हुए एक फोटो तो लो। उसकी मस्ती [illegible]

से लिपटती रही, तब तक भी गनीमत थी, पर उस समय तो मैं भी दंग रह गयी, जब उसने आपके साथ फोटो खिचवाया। ऐसा फोटो वह कहाँ रखेगी और किसे दिखाएगी ?"

"हाँ, आज उसका व्यवहार काफी बदला हुआ था", सोम ने कहा।

"बदला हुआ ? वह तो आज एक नशे में थी। आपके सान्निध्य में उसके होश-हवास खो गए थे।"

"तुमको कितनी मस्ती सूझ रही थी। तुम्हारी ही मस्ती के प्रभाव-क्षेत्र में वह बिचारी भी आ गयी।"

"हाँ, बड़ी बिचारी है इनकी। अच्छा यह बताओ, उसका स्वर टिप्पणी वाचक से प्रश्नवाचक हुआ, "आज तुमने पानी में उसके साथ क्या-क्या शैतानी की ?"

"मैंने अपनी ओर से कुछ भी नहीं किया। वह पानी में अपने शरीर को सीधा साध नहीं पा रही थी, इसलिए मुझे जगह बदल-बदलकर अपने हाथ उसके शरीर पर रखने पड़े।"

"सच बताओ, तुमने उसका वक्ष नहीं दबाया क्या ?" उसके स्वर में ईर्ष्या या किसी अन्य कठोर भाव का लेश भी नहीं था, शुद्ध आमोद क्रीड़ा कर रहा था, "एक बार वह तुम्हारे हाथों में से उछली तो मुझे लगा कि जरूर तुमने शैतानी की होगी।"

"नहीं, मैंने नहीं दबाया। हाँ, उसके शरीर का संतुलन बनाने के लिए मुझे एक बार अपनी हथेली उसके वक्ष पर रखनी जरूर पड़ी, पर वहाँ तो पेडेड ब्रेजियर के सिवा कुछ था ही नहीं।"

"हाँ, उसके वक्ष मुझसे भी बहुत छोटे हैं", उसने समर्थन किया।

"हाँ, एक बार मैं जरूर चिन्तित हो गया था कि अब शायद वह बुरा मान जाएगी।" सोम ने जब अपनी ओर से खत्म होती हुई बात को फिर जिन्दा किया, "पर मैं क्या कर सकता था। तैरना सिखाना क्रिया ही ऐसी है कि आप शरीर-स्पर्श से बच नहीं सकते।"

"क्यों, क्या हुआ था ?" इस बार बिन्दु के कान थोड़े से खड़े हुए।

"कुछ विशेष नहीं। एक हाथ एक-बार उसकी जाँघों के बीच चला गया था। पर वह बिल्कुल हिली-डुली नहीं।"

"फिर ?" बिन्दु के स्वर के साथ उसकी रुकी हुई सांस निकली।

"कुछ नहीं। वहां भी स्पर्श के नाम पर गीले कपड़े की एक पर्त और एक हड्डी की चुभन के सिवा कुछ नहीं था।"

"हूं।"

थोड़ी देर निस्तब्धता रही। फिर बिन्दु ने ही मुंह खोला, "आप बहुत शरीर हैं। लड़कियां आपके सामने ऐसे क्यों हो जाती हैं ? चार दिन पहले मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि वह अपने साथ किसी को इतनी लिबर्टी लेने दे सकती है। खास तौर से ऐसे आदमी को जो स्पष्ट ही किसी दूसरी का प्रेमी हो। आपने उस बिचारी का बरसों का ब्रह्मचर्य चार-पांच दिनों में ही भंग दिया।" उसने रसभरा उलाहना-सा देते हुए कहा।

इस आमोदयात्रा की पूर्णाहुति करने वे लखनऊ आए थे। यहां एक दिन घुमाने के बाद उन्हें गाड़ी पर बिठाकर बिदा कर देना था। स्टेशन पर ही उन्होंने एक रिटायरिंग रूम ले लिया। दिन भर घूम-घाम कर और एक पिक्चर देखकर जब वे लौटे, दस बज रहे थे। रिटायरिंग रूम खासा बड़ा था। एक कोने में बड़ी टेबिल और दो तीन कुर्सियां, दूसरे में बेंत की बनी हुई दो लम्बी आराम कुर्सियां और बीच में एक दूसरे से सटे हुए दो पलंग। दूसरे किनारे पर अटैच्ड बाथरूम। दिन भर के थके होने के कारण वे जल्दी ही सो गए। रात को ही कभी करवट बदल कर बिन्दु सोम के पलंग पर आ गयी थी। सबसे पहले वही शौच के लिए उठी। सोम की नींद टूट चुकी थी, वह बिल्कुल सटे हुए पलंग पर पास ही लेटी हुई उमा को देखने लगा। उसका मुंह दूसरी तरफ था पीठ और नितम्ब सोम की तरफ। सोने में पेटीकोट-साड़ी थोड़े ऊपर उठ आए थे और एकगोरी सुडौल पिंडली दिखाई दे रही थी। उसके कपड़े पीछे से कुछ इस तरह शरीर के अलग फैले हुए थे कि कोई चाहता तो उनमें से हाथ आगे बढ़ा कर बिना कहीं और स्पर्श किए सीधे उसके नितम्बों को छू सकता था। छह बज रहे थे। यह उन्हें विदा करके अकेला अपने कस्बे में लौट जाने वाला था। सप्ताह भर में चल रहा एक सपना अब टूटने के निकट आ रहा था। उसे एकाएक लगा कि

इस अवसर को यों ही जाने देना नही चाहिए। नही, वह उससे यौन संबंध स्थापित नही करना चाहता था। पर वह सप्ताह भर से बूंद-बूंद कर काफी भर जाने वाले घड़े मे एकाध गिलास पानी और डाल देना चाहता था। एक बारीक-सी, हवाई, धूप निकलने के बाद पिघल जाने वाली कच्ची बर्फ-सी कोई चीज उसकी चेतना मे फैलने लगी। लेटे ही लेटे उसने अपना बांया हाथ उठाया और नीचे से उसके कपड़ों में डालते हुए उसके नितम्बों पर रख दिया। शायद उमा जाग रही थी। क्योंकि दूसरे ही क्षण उसने करवट बदली, अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर उसकी तरफ देखा और झुका ली। यह काफी था। वह उठ बैठा और उसके सिरहाने के पास सरक कर उसके सिर मे हाथ फेरने लगा। उसके बाल बिल्कुल रेशम जैसे मुलायम और सुस्पर्श थे। "तुम्हारे बाल तो बहुत ही कोमल हैं, भई! सोम ने जैसे अपने स्वर से भी उनकी कोमलता की अनुकृति की। और उसके बालों की पूरी लम्बाई को अपनी अँगुलियो से सहलाते हुए उसका सिर उठाकर अपने घुटने पर रख लिया। उमा ने दूसरी करवट ली और उसकी गोद मे उलट गई। बिन्दु शौच से लौटी तो सोम की गोद मे लेटी हुई उमा को ओर देखती हुई बोली—"क्यो आज चलना नही है क्या?" उमा ने एक अँगड़ाई ली और उठ बैठी—"हाँ, चलना तो है ही।"

मूर्ति-भंजक

बात बहुत पुराने जमाने की है। पर सच आज भी है। एक मूर्ति-पूजक था। चाहता था कि कोई ऐसी मूर्ति मिले कि जिसके सामने अपना सर्वस्व रखते हुए जरा भी झिझक न हो, जरा भी सोचना न पड़े। जो उसके मन के उस सपने के बिल्कुल अनुकूल हो, जिसे वह युगों-युगों से पालता आ रहा था। अपने सपनों की मूर्ति की खोज में वह कहाँ नहीं गया, उसने मूर्तिकारों की दुकानें छानीं। बहुत-बहुत सुन्दर मूर्तियाँ थीं। एक से एक बढ़ कर। लेकिन सब उनके निर्माताओं के विचारों, भावनाओं और सपनों के अनुकूल। उसके सपनों की मूर्ति कहीं न थी। वह इतिहास के अजायबघरों में घूमा, पुराणों के पुरातत्व मन्दिरों में भटका। लेकिन हर मूर्ति पर उस समय की छाप थी, जिसमें वह गढ़ी गयी थी। हर मूर्ति पर उन अभिलाषों की छाया थी, जिसमें वह पली थी। उस धरती, पानी, आकाश का रूप-रंग-गंध थी, जिसमें वह बड़ी हुई। उसके सपने के रंग-रूप की कोई मूर्ति न थी। इस तरह वह युगों तक भटकता रहा—मूर्तिकारों की दुकानों से इतिहास के अजायबघरों तक। समाज के बाजारों से साहित्य की हाटों तक। पर कहीं भी उसे अपने सपनों की मूर्ति न मिली।

तब उसे लगा : उफ ! मैं भी कैसा पागल हूँ ? इस संसार में किसको अपनी पूजा के लायक गढ़ी-गढ़ाई मूर्ति मिली है, जो मुझे ही मिलेगी। यहाँ तो पत्थर मिलते हैं, पत्थर ! और हर एक को खुद अपने लायक मूर्ति गढ़नी होती है। अगर तू अपनी सम्पूर्ण पूजा को स्वीकार कर सकने वाली मूर्ति चाहता है तो तुझे मूर्तिकार बनना होगा। और स्वयं अपने लिए मूर्ति गढ़नी होगी।

उसने बरसों तक अभ्यास किया। छैनी और हथौड़ा चलाना सीखा। पत्थरों में से आकार उभारना—रूप रंग और रेखा, प्रकाश और छाया तराशना सीखा। फिर ऐसे किसी पत्थर की खोज में निकला जो उसकी मूर्ति का आधार बन सके। बरसों की खोज के बाद उसे एक पत्थर मिला। एक ऐसा पत्थर, जो वह सोचता था कि उसकी मूर्ति को सिद्ध सकता है। वह अपने उस प्रिय पत्थर को रोज निहारता और मन ही मन उसमें से अपनी कल्पना की वह मूर्ति उभारता और उसके सौंदर्य के नशे में मस्त हो उठता। वह उसके एक-एक अंग की गुलाइयाँ कल्पित करता, एक-एक उतार और उभार रूपायित करता और मगन हो उठता।

और एक दिन जब उसने अपनी कल्पना में अपने सपनों की मूर्ति का पूरा आकार बना लिया, वह छैनी हथौड़ा लेकर अपने उस आकार को उस पत्थर में उभारने के लिए तैयार हो गया। लेकिन ज्यों ही उसने उस पत्थर के शरीर पर छैनी रखी—पत्थर विरोध में गुर्रा उठा : यह तुम क्या कर रहे हो—तुम अब तक मुझे इतना प्यार करते रहे, क्या तुम मेरा अंग-भंग करोगे? क्या तुम्हें मेरा आकार प्रकार, रूप रंग पसंद नहीं है? ओह! मूर्तिकार अब समझा। यह पत्थर जिसे वह बरसों की मेहनत के बाद ढूंढ कर लाया था, महीनों उसे तराशने की योजनाएँ बनाता रहा, वह पत्थर तो स्वयं एक मूर्ति निकला! वह पत्थर जिसे वह अपने सपनों की मूर्ति का आधार बनाना चाहता था, आज तराशे जाने से इन्कार कर रहा था। चाहता था जिस स्थिति में—जिस रूप, रंग और आकार में मूर्तिकार ने उसे प्राप्त किया था, उसी में वह उसे स्वीकार करे, उसे पूजा दे।

एक तरफ एक मूर्ति की पत्थरता थी, नहीं बदलने का आग्रह था और दूसरी तरफ एक मूर्तिकार की सिसृक्षा। उसे बदल कर अपने सपनों के अनुकूल बनाने की इच्छा। अपने आदर्शों को उस पर ढालने का प्रयत्न। बड़ा विचित्र संघर्ष था। पर आखिर मूर्तिकार हारा। क्योंकि वह उस अनगढ़ पत्थर को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं कर सकता था और न उसे तराश कर अपने अनुकूल बना सकता था, इसलिए उसने अपना हथौड़ा उठाया और पत्थर के सिर पर दे मारा। पत्थर टुकड़े-टुकड़े हो गया। और ...ने जो सिर्फ एक मूर्ति-पूजक था अन्त में मूर्ति-भंजक बन गया।

आपका भविष्य

हाँ, तो पहले आप अपनी राशि बताइये। पर नहीं; अभी आप मीन-मेख··· करने लगेंगे। ठहरिये। पहले मेरी टैकनीक समझने की कोशिश कीजिये। आप जानते हैं कुछ लोग आपका नाम पूछकर भविष्य बताते हैं, कुछ लोग जन्म कुंडली देखकर तो कुछ लोग सिर्फ आपसे आपकी पसन्द के किसी फूल का नाम पूछते हैं और ऐसी हालत में आपकी बदल दी हुई पसंद के साथ ही साथ आपकी किस्मत भी बदल दी जाती है। पर जरा गौर कीजिये तो इनमें से कोई भी बात सच्चे अर्थों में भविष्य-निर्धारक नहीं होती। नाम तो आप जानते हैं, अन्धों के भी नयन-सुख होते ही है। और जन्म कुंडली? हाँ अलबत्ता जन्म-कुंडली पर थोड़ा बहुत विश्वास अवश्य किया जा सकता है, पर अपने हिन्दुस्तान में यह कला इतनी अविकसित है कि इसके निष्कर्षों पर अधिक जोर देना अवैज्ञानिक होगा। यहाँ जो जन्म-कुंडलियाँ बनायी जाती हैं, उनमें सिर्फ यही लिखा होता है कि जब आप जन्म ले रहे थे तब कौन-सा नक्षत्र किसकी जगह ले रहा था, कौन-कौन से नक्षत्र लड़ रहे थे, या प्यार कर रहे थे, कौन-सा सीधा, कौन-सा उल्टा चल रहा था; यह नहीं लिखा होता कि जब आप इस धरती का भार बढ़ाने की तैयारी में थे तब आपके पूज्य पिताजी किराया माँगने आये मकान मालिक से निपट रहे थे या आपकी छोटी मौसी जी से जो इस शुभ अवसर पर विशेष रूप से आमन्त्रित की गयी थी। कि उस समय आपके बड़े भाई साहब जिनके

र पाँव

इस मत्यलोक में पदार्पण किया है, आपको

ी स्त्रियाँ आपकी अम्मा के सतीत्व पर सन्देह

कुंडलियाँ अधूरी होती हैं। इस और ऐसी

ही और कई बातो का, जिनका आपके भविष्य को बनाने और बिगाडने मे महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है, उनमे उल्लेख ही नही होता। आसमान के सितारो की गतिविधियो के बारे मे तो वे बहुत कुछ कह देते हैं लेकिन धरती के सितारे, जो आपके ज्यादा नजदीक हैं, उस समय क्या कर रहे थे, इस बारे मे बिल्कुल चुप रहती हैं। इसलिए आप अपनी कुडलियाँ अपने पास रखिये। मैं एक बिल्कुल नये तरीके से आपके भविष्य का पूरा नक्शा आपके सामने पेश कर रहा हूँ।

तो मैं आपसे आपकी राशि पूछ रहा था। पर वह पुरानी वाली राशि नही, जिसका निश्चय जन्म, समय और नाम से होता है। देखिये! आधुनिक फलित ज्योतिष ने एक नए प्रकार के, अधिक व्यावहारिक और अधिक वैज्ञानिक राशि-विभाजन को स्वीकार किया है। उसे समझिये और उसमे अपना स्थान निर्धारित कीजिए। तो इस नये ज्योतिष के अनुसार ससार मे मनुष्य सामान्यत: दो राशियो के पाये जाते हैं: या यो कह लीजिए दो तरह के पाए जाते है: पहले राशि वाले और दूसरे बिना राशि वाले। पर चूँकि इससे बिना राशि वाले बिचारे कही यह न समझ लें कि कोई राशि नही है, इसलिये उनका कोई भविष्य नही है, जबकि वास्तव मे पूरा भविष्य—कम से कम भविष्य तो—बिना राशि वालो के ही हाथो मे है; इसलिए हम इन दोनो प्रकारो को दूसरे नामो से पुकारेंगे, जो कुछ अशिष्ट तो जरूर है पर है बडे काम के। ये नाम है - हुजूर राशि, मजूर राशि। इन नामों के अपनाने से फायदा यह है कि राशि-निर्धारण मे आदमी को बडी सुविधा हो जाती है। मसलन आप अपनी राशि जानना चाहते है तो अपने आपसे एक सीधा-सा सवाल पूछिये कि आपको लोग हुजूर कहते हैं या आप लोगो को? बस, जवाब मिल जाएगा। पर अगर आप पायें कि आपके साथ दोनो बातें ठीक हैं, कि कुछ को आप हुजूर कहते हैं और कुछ आपको, तो आप अपने भविष्य की अनिश्चितता का अन्दाज इसी से लगा सकते हैं कि आपकी इस राशि को अभी तक कोई स्थायी नाम ही नही दिया गया है। यो काम चलाने के लिए इसे 'मध्यम-राशि' कहा जा सकता है पर कई लोग 'त्रिशकु-राशि' नाम ज्यादा पसन्द करते हैं।

सो यह सदा राशि-विभाजन नाम के आधार पर नहीं, काम के आधार पर करता है। आप अगर कोई सरकारी अफसर हैं या किसी फर्म या किसी फैक्ट्री या मिल के मालिक हैं या ठेकेदार हैं—फिर चाहे मन्दिर और पुल बनवाने से लेकर धर्म और कानून बनवाने तक के क्यों न हों—या सट्टेबाज हैं या नेतागिरी करते हैं अर्थात् कोई भी इस तरह का काम, जिसमें हवा में मछलियों की तरह तैरते हुए रुपयों को अकल के काँटे में फँसा कर पकड़ना होता है, तो स्पष्ट है कि आप हुजूर-राशि के हैं। और अगर आपके पास काम करने के लिये, यानी इस तरह के काम करने के लिए, कोई राशि नहीं है, आप दूसरों की राशि के बल पर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं : अर्थात् सब मानों में परोपजीवी होने का इल्जाम बार-बार लगाते हैं तो अवश्य ही आप मजूर राशि के हैं।

हाँ, तो अब एक-एक करके आइये जनाब !

अच्छा, आप ?! डॉक्टर ? सिविल सर्जन ? कहाँ, इसी शहर में ? ठीक है ! ठीक है ! तो सुनिये—

इस सप्ताह आप कोई महत्वपूर्ण कार्य पूरा कर लेंगे। आपके दिन ठीक ढंग से कटते रहेंगे, सिर्फ मंगलवार को जब आप सेठ पुन्नालाल मुन्नालाल की कोठी से उनकी तबीयत देखकर देर से अस्पताल जायेंगे तब एक फटेहाल बुढ़िया-सी लगने वाली औरत एक पाँच साल के बच्चे को लाकर आपके पैरों पर डाल देगी और आपको गालियाँ देती हुई लोगों को इकट्ठा करना चाहेगी, लेकिन आप बिना उसकी ओर ध्यान दिये अपने कमरे में चले जायेंगे। ठीक भी है, यों हर किसी पर ध्यान दिया जाय तो जीना हराम हो जाय। बाद में चपरासी से आपको पता लगेगा कि वह औरत पिछले दो घन्टों से आपके इन्तजार में लगी हुई मरीजों की लाइन *में खड़ी थी और बीच-बीच में चिल्ला कर कहती जाती थी : मेरे बेटे को* बचाओ, मेरा बेटा मर रहा है ! लेकिन चूँकि आप वहाँ थे नहीं, इसलिए उसका मरना जरूरी था। खैर, गुरुवार को आपका नौकर बीमार हो जायगा और इसलिये बच्चों की ट्यूटर को चाय नहीं मिल पायगी। लेकिन कोई खतरे की बात नहीं है क्योंकि वह कोई गलती पढ़ाने में नहीं करेगी। फिर भी अगर वह कमबख्त गुस्से में आकर आपके किसी मासूम दिल

ऐसा लगता है कि आपका भार आपकी शक्ति के सामान्य मात्रा की अपेक्षा कुछ कम है। इस बात या अधिक से अधिक इस सिपाही के भीतर-भीतर आपके साथ एक विशेष घटना घटेगी। होता यह कि एक पागल-सा समझा जाने वाला आदमी आपके सामने पेश किया जायगा और वह बहुत ही गिड़गिड़ा कर आपसे कहेगा कि आप उसकी आत्मा का ऑपरेशन कर दें। आप चौंकेंगे—आत्मा का ऑपरेशन!! और वह कहेगा—हाँ, डॉक्टर साहब, मेरी आत्मा आजकल मुझे बहुत कचोटने लगी है, मुझे रात-रात भर नींद नहीं आती, हर वक्त दर्द होता रहता है। आप विवेक से जानना चाहेंगे और वह बतायेगा कि आजादी से पहले उसने क्रान्तिकारी दल का काम किया था और वह जेल भी गया था लेकिन आजादी के बाद उसने एक सरकारी नौकरी कर ली। फिर वह धीरे से कहेगा—इन्टेलीजेन्स में, कि अब उसका काम उन लोगों पर जासूसी करना है जो सोचते हैं कि आजादी की लड़ाई अब भी चल रही है। वैसे वह अपना काम ढंग से कर रहा है पर कभी-कभी उसके सीने में कोई बगूला-सा उठता है और उसके सारे अस्तित्व को छू लेता है—ऐसे वक्तों में वह अपने आप से भयंकर घृणा करने लगता है—कई बार अपने ही मुँह पर थूक देना चाहता है। वह अपने-आपको आजादी के आन्दोलन का गद्दार समझने लगता है जिसने लड़ाई को बीच में ही छोड़ कर दुश्मन से साँठ-गाँठ कर ली है। आपको उसकी हर बात नयी और आश्चर्यजनक लगेगी और कुछ क्षण रुककर वह फिर गिड़गिड़ायेगा—*डॉक्टर साहब! ईश्वर के लिए मेरी इस आत्मा को काट करके अलग कर दीजिए, ताकि मैं साधारण लोगों की तरह ढंग से काम कर सकूँ, ढंग से जी सकूँ।* मुझे

डर है कि अगर जल्दी ही कोई इलाज न किया गया तो, या तो मैं पागल हो जाऊँगा या आत्म-हत्या कर लूँगा । आप गभीर हो जायेंगे, सोचेंगे कि क्यो आपको कभी आपकी आत्मा ने नही कचोटा ? और शायद इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि आपके और आप जैसे आपके कई मित्रो के पास आत्मा नाम की कोई चीज हो नही है, कि इतने दिन से आप बिना किसी आत्मा के ही जिये चले आ रहे थे, कि शायद आपके घरवालो ने या परि-वार वालों ने या समाज वालो ने बचपन मे ही आपकी आत्मा को काटकर अलग कर दिया था, कि तभी तो आप इस ससार के सारे अन्याय और अत्याचार देखते आ रहे हैं, देखते क्या आ रहे हैं उनमे हाथ बँटाते आ रहे हैं और आपके सीने मे एक बार भी कोई बगूला नही उठा। और उस दिन पहली बार आप पायेंगे कि वह उठ रहा है । आपको लगेगा कि आपकी युगो-युगो से बेहोश आत्मा जागने की कोशिश कर रही है, अँगड़ाइयाँ ले रही है !! रोगी से आपकी शेष बातचीत अस्पताल मे नहीं होगी—आप उसे साथ लेकर अपने कमरे मे बैठे होंगे। और घण्टे भर बाद जब आप लोग वहाँ से निकलेंगे, आपका नौकर आपके चेहरे पर एक अप्रत्याशित मानवीय प्रकाश पाकर गद्गद हो उठेगा और आपकी इच्छा होगी कि आप उसे बाँहो मे भर लें।

अच्छा, अब आप आइये जनाब ! हाँ, कहाँ काम करते हैं आप ? जलकल मे ? अच्छा ! क्लर्क हैं ! ठीक है !!

देखिये, सप्ताह का आरभ कठोर परिश्रम और मानसिक अशान्ति मे होगा पर बाद मे आप अधिक शान्ति और सन्तोष अनुभव कर सकेंगे । इस सप्ताह आप नयी मित्रता किसी से मत कीजिये, नहीं तो जोखिम उठानी पड़ेगी—खास तौर से आर्थिक नुकसान की सभावना अधिक है। सफेद चीजो का अभाव रहेगा—जैसे दूध, चावल, रुपया । आप सादे रंग की चीजों से प्यार करना सीखेंगे और यह शुभ है, जैसे दूध की जगह चाय और रुपयो की जगह पैसे। अट्ठाईस तारीख का दिन आपके लिए बड़ा बुरा साबित होगा। ऑफिस से घर आने पर रोटी के साथ सिर्फ दाल मिलेगी और वह भी अरहर की। और आप जब उदास आँखें मींच कर कुर्सी की पीठ पर सिर टिकाकर, आराम कर रहे होंगे तब आपको लगेगा

कि आप किसी मनोविश्लेषक के कमरे मे मानसिक चिकित्सा के लिए बैठे हुए कोई रोगी हैं और ज्योंही वह 'अरहर की दाल' शब्द का उच्चारण करता है आप उसके ऐसोसिएशन मे 'चावल' चिल्ला पड़ते हैं। और तभी आपकी आँख खुलेगी और आपकी पत्नी कह रही होगी—चावल! आपका दिमाग तो खराब नही हो रहा है! अट्ठाईस तारीख को चावल!! और आपकी नाक मे बासमती चावलो की मीठी-मीठी गन्ध गूँज रही होगी और आप अपनी नाक के इस अभद्र व्यवहार पर भल्ला रहे होंगे, लेकिन क्योंकि आप उसे काट कर नही फेंक सकते, इसलिए आपको चुप रहना ही पड़ेगा। अगले दिन अगर इतवार हुआ तो और भी बुरा है। क्योंकि दोपहर के समय जब आप मक्खियो के साथ-साथ दोपहर की उमस को भी चादर ओढ़ कर झुठलाने की कोशिश कर रहे होगे, आपका छोटा लड़का आपसे कुलफी के लिए दो पैसे माँगने आयेगा। आप बात को कल पर टालना चाहेगे, क्योंकि कल न आप घर में होंगे, न सवाल उठेगा। पर बाहर कुलफी वाला सिन्धी लड़का जोर-जोर से चिल्लायेगा—रबड़ी मलाऽई पिस्तेऽ वाली बादाम वाली कुल्लफीऽऽ!! आपका नारायण रो देगा। आप अपना चाँटा तैयार करके उसकी ओर झपटेंगे और वह बाहर भाग जायगा। आप फिर सोने की कोशिश करेंगे, पर मैं आपसे सच कहता हूँ सोना आपकी किस्मत मे ही नहीं लिखा है, और लोहा लेने की आपकी हिम्मत है नही! हाँ, तो इतने मे पड़ौस के इंजीनियर साहब की पत्नी उलाहना देने आ जायेंगी कि नारायण ने उनके दिनेश के हाथ से कुलफी छीन कर गटर मे फेंक दी है। आपकी श्रीमतीजी नारायण के लिए एक छड़ी ढूँढकर उसके घर आने का इन्तजार करेंगी और आपके साले साहब, जो कल ही आये होंगे, अपनी बहिन से कहेंगे—अरे वाह! मिठाई खिलाओ बहिन! तुम्हारे घर एक बहादुर लड़का पैदा हुआ है! और आप अपने कमरे में लेटे ही लेटे उलट कर तकिये में अपना मुँह छिपा लेंगे।

और आप? कौन से स्कूल में? गर्ल्स मिडिल स्कूल!

अच्छा! तो आपके पति•••क्या? नहीं हुई है शादी? कोई बात नहीं! कोई बात नही!! अब हो जायगी। शादी होने मे क्या देर लगती

है। चिन्ता मत कीजिये, भगवान पर भरोसा रखिये, वह सब ठीक ही करेगा। क्या? भगवान पर भरोसा नहीं है? ठहरिये, एक मिनिट ठहरिये। मैं बताता हूँ कि क्या होगा। होगा यह कि आप अपने किसी पड़ोसी लड़के से प्यार करने लगेंगी। जरूर करने लगेंगी। यह तो आपको करना ही होगा, मैं शर्त बद कर कह सकता हूँ। और तब आपके टूटे-टूटे कामों में एक क्रम-सा आ जायगा। आपकी बिखरी-बिखरी दिनचर्या में आपको कोई सिलसिला, कोई अर्थ दिखाई देने लगेगा। आपको पहली बार लगेगा कि चांद खूबसूरत होता है और सितारे शोख। कि सूरज की किरणों में एक मीठी गरमाहट होती है और सांझ की हवा में एक सौंधी खुशबू। कि लड़कियाँ सब मूर्ख नहीं होतीं और कुछ तो बहुत अच्छा गा भी लेती हैं। कि स्कूल के रास्ते में जो बंगले पड़ते हैं उनमें रातरानी के पौधे लगे हुए हैं। कि सिरीष और युकलिप्टिस में अन्तर होता है। कि कक्षा में चिल्लाने वाली नन्हीं-नन्हीं लड़कियों को खड़ी स्लेट से पीटना निर्दयतापूर्ण है।

लेकिन एक दिन ज्यों ही आप घर पहुँचेंगी, अपने पिताजी का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर सहम जायेंगी। आप सुनेंगी कि आपने उनकी इज्जत खाक में मिला दी है। कि आपको ऐसा करने से पहले कहीं डूब मरना चाहिये था। और जब वे चूल्हे में जलाने की एक मोटी-सी लकड़ी उठाकर आपकी ओर बढ़ेंगे तब आप अपनी पूरी इच्छा शक्ति से चाहेंगी कि आपके सिर के दो टुकड़े हो जायें और खून से फर्श रंग जाय। लेकिन आपकी माताजी के बीच में आ जाने से ऐसा नहीं हो पायेगा।

और दूसरे दिन आपसे कहा जायगा कि आपके लिए एक लड़का ढूंढ लिया गया है, कि वह एक पोस्टमैन है और उसकी तरक्की जल्दी ही होने वाली है और आप जब क्लास में जाएँगी तो आपकी इच्छा होगी कि किसी लड़की के गोल भरे हुए गाल पर इतनी जोर से चांटा मारें कि उसके मुँह से खून निकलने लगे।

और इसीलिए मैं कहता हूँ कि आप चिन्ता न करें। आपकी शादी हो ही जायगी। मास्टरी-वास्टरी आप छोड़ देना। पतिदेव कमायेंगे, आप मस्ती से घर में पड़ी रहना। और जब वे दिनभर चिट्ठियाँ बाँटने के बाद

घर आयें तो आप अपने बालों में सरसों का तेल और मांग में गहरा-सा सिन्दूर भरकर तैयार रहना। गाना तो खैर आपको छोड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि यह भले घर की बहुओं का काम नहीं है पर इसकी जगह आप कोई दूसरा काम शुरू कर सकती हैं, जैसे सूत कतना। और आप निश्चिन्त रहिये, इसमें किसी को कोई शिकायत नहीं होगी।

लेकिन ठहरिये। एक दूसरी बात भी हो सकती है। हो सकता है कि जब आपसे कहा जाय, आपके लिए एक लड़का ढूंढ लिया गया है, तब तक आपकी आँखों के आगे से कोई तूफान बाहर की या अखबार की, [illegible] की या उपन्यास की किताब निकल जाय और आप कुछ और बातें सोचने लगें। यह बड़ी खतरनाक बात होगी। इस बाधा से अगर आप बच गयीं तो निश्चिन्त चैन की बंसी बजायेंगी। पर अगर आपने दूसरा रास्ता अपनाया अर्थात् अपने पड़ोसी विमल साहब के साथ मुँह [illegible]

भरोसा करने की कोशिश करें और उन विमल साहब को एक बार डांट-कर कह दें कि वे आइन्दा आपसे न मिला करें।

लेकिन तभी एक पुलिस इन्सपेक्टर के साथ दो सिपाही आए और ज्योतिषी को गिरफ्तार करके ले गए, क्योंकि वह ज्योतिषी नहीं, जेल से भागकर आया हुआ कोई कैदी था। पुलिस की नज़र बचाने के लिए ज्योतिषी बना फिरता था। ज्योंही इन्सपेक्टर साहब ने उसका झोला देखा उसकी पोल खुल गई। क्योंकि उसमें भृगुसंहिता या सूर्यसंहिता या कीरो की किसी किताब की बजाय मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन की किताबें निकलीं। पर था कितना घाघ! आखिर तक इन्सपेक्टर साहब की आंखों में धूल झोंकने की कोशिश करता ही रहा, कहता ही रहा ये ज्योतिष की ही तो किताबें हैं साहब! यह देखिये मार्क्स! यह जर्मनी का एक बहुत बड़ा ज्योतिषी था, इसमें और दूसरे ज्योतिषियों में फर्क सिर्फ इतना ही है कि दूसरे लोग एक-एक आदमी का अलग-अलग भविष्य देखते हैं और इसने सारी दुनिया के लोगों का एक ही भविष्य देखा था।

देवताओं का सरकस

लगातार दो-ढाई घण्टों तक मिसेज वर्मा के साथ माथा-पच्ची करने के बाद जब चाय आयी तो पहला घूंट भरते ही वे अप्रत्याशित ढग से बोलीं—तो क्या तुम सचमुच नास्तिक हो रणजीत ? 'सचमुच' पर उन्होंने कुछ इस तरह जोर दिया कि एक कटुता भरी मुस्कान मेरे चेहरे पर फैल गयी। एक सम्भ्रान्त महिला मेरे सामने बैठी थी, जो यह भी नही सोच पा रही थी कि कोई सचमुच नास्तिक भी हो सकता है। जरा तीखा-सा जवाब देने की इच्छा हुई। बोला—मैं समझ नही पाता मिसेज वर्मा, कि कैसे मनुष्य जैसा विवेकशील प्राणी ईश्वर जैसी मूर्खता-पूर्ण कल्पना पर विश्वास कर सकता है। तीर लगा, और चुभा। वे चाय के घूंटों में कड़वाहट पीने लगीं। कुछ पछतावा-सा हुआ, क्यो मैंने एक बारगी इतनी तीखी बात कह दी। तभी प्रियम्वदा ने आकर हम दोनो को उस मानसिक तनाव की स्थिति से उबारा। साग्रह बोली—आज सरकस जायेंगे, चाची ! चाची ने अपनी हल्की सी मुर्झाहट लिए पलकें उठाकर एक बार उसकी ओर देखा, दूसरी बार मेरी ओर—चलोगे ? प्रायश्चित का अवसर-सा पाकर मैंने कह दिया—चले चलेंगे।

पिछला शो खत्म होने मे अभी देर थी। बाहर घूमने लगे। पोस्टर। अलग-अलग जानवरो के अलग-अलग करतब चित्रित। कम्पनी का एक आदमी हमे बताने लगा—यह गेंडा तीन टन का है। यह हाथी, जो तिपाई पर खड़ा है, बहुत बूढा हो चुका है, पर बहुत वफ़ादार है। यह

'टैन सिटर' शेर अफ्रीका के जंगलों से पकड़ा गया था, बड़ा खूंखार है। अब भी कभी-कभी बिगड़ उठता है। और अन्तिम पोस्टर : वही शेर सरकस की शाम दिया बुझने के बाद दर्शकों को झुक-झुक कर सलाम कर रहा है और वे खिलखिला कर हँस रहे हैं।—यह सरकस का अन्तिम दृश्य है, उसने कहा। मिसेज वर्मा प्रशंसा के से लहजे में बोली—क्या खूब पेश किया है इन्सान ने खूंख्वार जंगली जानवरों को। और उनका हैंडी की जंजीर वाला हाथ आवेश में ऊपर उठ गया। उनके हाथ पर से जंजीर के साथ-साथ उतरती हुई मेरी नजर हैंडी तक गयी और बात बदलने के लिये मैंने उनसे पूछा—मिसेज़ वर्मा! यह कुतिया आपने कहाँ से खरीदी थी?—खरीदी नहीं थी, मिसेज वर्मा का चेहरा एकाएक पीला सा पड़ गया, जैसे उन्होंने उसे कहीं से चुराया हो और चोरी पकड़ी जाने वाली हो,—यह मेरे एक फ्रेन्ड ने प्रेजेन्ट की थी मुझे, मेरी शादी पर; उन्होंने एक डूबती हुई सी आवाज़ में कहा। एक दृश्य मेरे सामने उभरा :

·· शहनाई के स्वर, एक लड़की का पीला चेहरा और जंजीर से बंधी एक बेज़ुबान कुतिया।—यह···यह···, अटकते हुए नौकर कहता है,—यह राजेश बाबू ने भेजी है।—राजेश बाबू ने!, मन ही मन दुहराती है मीना। उसे लगता है, वह भी कोई जंजीर से बंधी हुई कुतिया है, जिसे उसके पिताजी मिस्टर सुनील वर्मा आई० ए० एम० को प्रेजेन्ट कर रहे हैं। दो-दो गर्म आंसू, एक हल्की सी सिसकी और फिर शहनाई के स्वर······

शो अब भी खत्म नहीं हुआ था। हम फिर टहलने लगे। सड़क की ओर देखा तो कुतूहल हुआ। एक आदमी साष्टांग प्रणाम की स्थिति में से उठ रहा था। कुछ लोग आस-पास खड़े थे। हम भी नज़दीक गये। वह खड़ा होकर बैठा, झुका और साष्टांग प्रणाम कर जहाँ हाथ पहुँचे वहीं फिर खड़ा हो गया। इस क्रिया को वह बार-बार दुहराता जा रहा था और हर बार अपने शरीर की लम्बाई के बराबर फासला तय करता

हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ता जा रहा था। कुछ अजीब-सा लगा।—यह इस तरह कहाँ तक जाएगा ? मैंने पास वाले दर्शक से, बिना उसकी ओर उन्मुख हुए पूछा।—गल्ताजी। यह बोला—इसने कुछ मनौती मानी होगी।—गल्ता अर्थात् तीन मील और, मैंने मन ही मन सोचा। पोस्टर का शेर मेरे दिमाग मे घूम गया। लगा जैसे यह संसार देवताओं का एक विशाल सरकस है। यह और इसकी तरह के कितने ही लोग उनके गुलाम पशु हैं, जिनको देवताओं ने अपने मनोरंजन के लिए तरह-तरह के खेल सिखाये हैं और जब ये झुक-झुक कर सलाम करते हुए अपनी भूमिकाएँ अदा करते हैं, देवताओं की दर्शक-मण्डली खिल-खिला उठती है, अपनी सफलता पर कि कैसे खूँख्वार जंगली जानवरों को उन्होंने अपने इशारों पर नाचना सिखाया है। रूपक मैंने मिसेज वर्मा को सुनाया। वे थोड़ी मुस्कुरायी फिर ज़रा गम्भीर होकर बोली—यह अपने-अपने विश्वास का विषय है मिस्टर रणजीत ! तुम बुद्धिवादी लोग उस श्रद्धा को कभी नहीं समझ सकते जिससे अभिभूत होकर यह इस गल्ताजी के मन्दिर तक जा रहा है।—और···और···, मैंने बिना उनकी बात पर ध्यान दिये अपने रूपक को आगे बढाते हुए कहा—और अगर देवताओ के सरकस का कोई शेर बगावत कर बैठे तो ? तो क्या हो मिसेज वर्मा ? मसलन् यह आदमी, जो न जाने कितनी दूर से घुटने और कुहनियाँ रगड़ता हुआ चला आ रहा है, विद्रोह मे तन कर खडा हो जाय तो ?—आइडिया ! अब तक चुपचाप साथ चलने वाली प्रियम्वदा फुसफुसायी। मिसेज वर्मा ने उसकी ओर लगभग घूरते हुए देखा और मेरी ओर उन्मुख हुई।

लेकिन कुछ कहने का अवसर उन्हें नही मिला। क्योंकि अचानक एक भयानक दहाड हुई और भगदड़ मच गयी। सरकस की सीमाओं के पर्दे टूट-टूट कर गिरने लगे और अन्दर के दर्शक ताबड-तोड़ भागते हुए बाहर आने लगे। उन्हे [भागते देख कर बाहर जो लोग खड़े थे वे भी जिधर जिसको रास्ता मिला भागे। सरकस का शेर छूट गया

था। मिसेज वर्मा ने डेजी की जंजीर छोड़ दी और भागी। काफी दूर जाकर जब हाँफते-हाँफते हम लोग रुके तो डेजी घबरायी हुई-सी उन्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उनके पास दौड़ी आयी। अपनी वफादार कुतिया को अपने पास देखकर उनकी आँखों में एक खास तरह की चमक-सी आ गयी। डेजी के चेहरे को मैंने देखा तो उस पर एक ऐसी चौंक दिखाई दी कि लगा, अगर वह बागी शेर अभी इसके सामने होता तो यह भी जरूर पूछती—क्या तुम सचमुच नास्तिक हो?

चिड़े-चिड़ी की कहानी

एक थी चिड़ी। एक था चिड़ा। चिड़े और चिड़ी में प्यार। रोज जब चुगा चुगने जाते, बातें करते। एक दिन चिड़े ने चिड़ी से कहा, "अब हमें ब्याह करके घर बनाना चाहिए।" चिड़ी चौंकी—"ब्याह'! यह कैसे हो सकता है! मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान!!" "तो क्या हुआ" चिड़ा बोला, "आखिर हैं तो हम दोनों चिड़िया ही।" चिड़ी कुछ देर सोचती रही फिर अचानक धीमी आवाज में बोली "चिड़े! क्या ही अच्छा होता हम केवल चिड़ियाँ ही होतीं, न हिन्दू न मुसलमान।" "ऐसा ही था, एक समय ऐसा ही था मेरी प्यारी चिड़िया! और फिर ऐसा ही होगा लेकिन अभी दिन लगेंगे।" "क्या कहते हो चिड़े! क्या कभी ऐसा भी समय था जब कोई हिन्दू और मुसलमान नहीं था, सब चिड़ियाँ थीं?" "हाँ था" एक ठण्डी साँस लेकर चिड़े ने कहा, "लेकिन इन दुष्टों ने हमारे टुकड़े-टुकड़े कर दिये, किसी को हिन्दू बना दिया किसी को मुसलमान, किसी को सिक्ख, किसी को ईसाई।" "यह सब कैसे हुआ चिड़े" चिड़ी ने उसकी बात काट कर पूछा, "मुझे बताओ यह सब कैसे हुआ।" चिड़े ने शान्त स्वर से कहा, "धूप काफी तेज है आओ हम पेड़ की डाली पर बैठ जायें और मैं तुम्हें सारी बात बताता हूँ।" वे दोनों उड़-कर पास के एक पेड़ की एक घनी डाली पर जा बैठे। और चिड़े ने शुरू किया :

"बहुत समय पहले जब जंगल पर किसी का अधिकार नहीं था औ दूरबीन भी नहीं थी सारे जगल की चिड़ियाँ अपने-अपने घोसलो मे आराम से रहती थीं। सुबह होते ही सब बाहर निकलती और चुगने चली

जातीं। वापस आते वक्त वे अपने बच्चों के लिए भी कुछ दाने बीन कर ले आतीं। कभी-कभी ऐसा होता कि उन्हें दाने नहीं मिलते। इसी तरह कभी-कभी उन्हें ज्यादा दाने भी मिल जाते थे। जब उन्हें ज्यादा दाने मिलते, वे उन चिड़ियों को दे देतीं जिन्हें नहीं मिले होते और जिस दिन नहीं मिलते अपनी पड़ोसी चिड़ियों से, जिनके पास दाने होते, माँग लेतीं। इस तरह सब मिलजुल कर रहती थीं। पर धीरे-धीरे कुछ चिड़ियों ने जो ताकतवर थीं जंगलों पर अधिकार जमाना शुरू किया। वे जंगल के किसी एक हिस्से के बारे में यह कहने लगीं कि यह हमारा है और कमजोर चिड़ियों को उसमें घुसने से रोकने लगीं। कमजोर चिड़ियाँ बिचारी बड़ी दुःखी हुईं। तब उन्होंने एक दिन मिलकर ताकतवर चिड़ियों से प्रार्थना की कि किसी तरह उन्हें भी जिन्दा रहने दिया जाय। ताकतवर चिड़ियों ने उन्हें इस शर्त पर अपने जंगलों में दाने बीनने की अनुमति दे दी कि जितने उन्हें दाने मिलें उनके आधे वे मालिक चिड़ियों को दिया करें। लाचार कमजोर चिड़ियाँ ऐसा ही करतीं। लेकिन इस तरह से भर पेट दाने कभी नसीब न होते। तब कुछ चिड़ियों ने बहुत सोच-सोचकर एक ऐसी चीज बनाई जिसे आँख से लगा कर देखने से दूर-दूर के सब दाने दिखाई दे जायें। सब चिड़ियों का समूह खुशी से नाच उठा। इस चीज का नाम उन्होंने दूरबीन रक्खा। लेकिन दूरबीन बहुत मुश्किल से बनती थी इसलिए दूरबीन बनाने वाली चिड़ियों ने दूरबीन के बदले में बहुत से दाने माँगे। अब जिन मालिक चिड़ियों के घोंसलों में बहुत से दाने थे उन्होंने दूरबीनें खरीद लीं। वे बिना दूरबीन वाली कमजोर चिड़ियों से दाने इकट्ठे करवातीं और उनमें से कुछ उनको भी दे देतीं। लेकिन दिन-भर की मेहनत के बाद इन बेचारियों को मजदूरी में इतने कम दाने मिलते कि उन्हें आधी भूखी रहकर ही सोना पड़ता, जैसे हमें सोना पड़ता है, चिड़े ने कहा।

“फिर ?” चिड़ी ने सहारा दिया। चिड़े ने फिर शुरू किया, ‘हुआ यह कि दूरबीन वाली चिड़ियों और बिना दूरबीन वाली चिड़ियों में झगड़े होने लगे। कभी-कभी मारपीट भी हो जाती। बिना दूरबीन वाली चिड़ियाँ कहतीं हम दिनभर में इतने दाने इकट्ठे करती हैं लेकिन हमें इतने

कम दाने देती हो कि हमे भूखे रहना पड़ता है। और तुम बिना मेहनत किये आराम से इतना दाना हड़प लेती हो। दूरबीन वाली जिनके पेट ज्यादा खा-खाकर मोटे हो गये थे कहती : "लेकिन तुम इतने दाने इकट्ठे तो हमारी दूरबीन की सहायता से ही करती हो ना ? इस बात को क्यों भूल जाती हो। हम तो तुम्हारे भले के लिए ही तुमसे काम लेती हैं, तुम्हारी इच्छा हो तो करो नही तो भूखो मरो।" और जगल मे दाने इतने कम हो गये कि बिना दूरबीन के मिलना मुश्किल। लाचार उन्हें काम करना पड़ता। लेकिन उनके अन्दर एक आग सुलग रही थी। उन्होने सोच रखा था कि किसी दिन मौका पाकर हम इनकी दूरबीनें छीन लेंगी। दूरबीनो वाली चिड़ियों को भी चिन्ता हुई : हम इतनी कम हैं और ये इतनी ज्यादा कि कभी सीधी लड़ाई लड़नी पड़ी तो हमे मरना पड़ेगा। इसलिए उन्होने एक नयी तरकीब सोची। उन्होंने तय किया कि अपने कुछ प्रतिनिधि बिना दूरबीन वाली सिकुड़े पेट वाली चिड़ियों के पास भेजने चाहिये कि उन्हें आपस में लड़वा दें ताकि वे हमसे न लड़ें। अपने मे से सबसे ज्यादा चालाक चार मोटे पेट वाली चिड़ियो को उन्होने यह काम सौंपा।

एक शाम को चारों मोटे पेट वाली चिडियाँ छोटे पेट वाली चिडियो के बसरे पर जा पहुँची। वहाँ उन्होने डोडी पिटवाई कि कुछ विद्वान् लोग प्रवचन देने के लिए आये हैं। सब एकत्र हो। जब सब चिड़ियाँ इकट्ठी हो गईं तब एक मोटे पेट वाली चिडिया ने, जिसने अपने गले मे एक लम्बा डोरा डाल रखा था, चहकना शुरू किया :

"बहिनो, मेरा नाम खरपात्री है। ईश्वर ने बहुत कृपा करके तुम लोगों के उद्धार के लिए मुझे यहाँ भेजा है।" लेकिन यह ईश्वर कौन है ? बहुत-सी चिड़ियें एक साथ चिल्ला पड़ी। खरपात्री जी का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। क्षण भर तक वह चुप रही। सब चिड़ियाँ सहम गयी। पता नही अब क्या हो। पर क्षण भर के बाद ही खरपात्री जी ने सयत होकर कहा—'सचमुच तुम लोग कितनी अज्ञानी हो, उफ् ! तुम्हे यह भी पता नहीं कि ईश्वर कौन है ! इसीलिए तो मैं आयी हूँ, उस ईश्वर का सदेश देने ही, जिसे तुम अभी जानती तक नही।' और उसने अपने दायें

पंख के नीचे से कागजों के कुछ पुलन्दे निकाले 'ये देखो तुम्हारे शास्त्र हैं, ये चारों वेद, ये उपनिषद, यह रामायण, यह महाभारत, यह मनुस्मृति।' और एक-एक करके सारे पुलन्दे उनके सामने रख दिये। फिर दयार्द्र होकर बोली, 'तुम सब अँधेरे में भटक रही हो और नहीं जानतीं कि रास्ता किधर है। आओ मैं तुम्हें अँधेरे से उजाले की ओर ले चलूँ, असत् से सत् की ओर ले चलूँ। तुममें से जो भी ईश्वर और उसके अवतारों में विश्वास करती हो, वेदों और उपनिषदों में विश्वास करती हो, वर्णाश्रम धर्म में विश्वास करती हो, मेरे साथ आ जाय।' और वह मोटे पेट वाली धूर्त चिड़ी एक कोने में जाकर खड़ी हो गई। दो तीन बूढ़ी-बूढ़ी चिड़ियाएँ उठीं और उसके पास चली गईं।

"अब दूसरी चिड़ी, जिसने अपनी पूँछ काट ली थी, सामने आई और बोली: 'सातवें आसमान पर रहने वाले खुदावन्द ने खुद मुझे हुक्म दिया कि मैं काफिराना कामों में लगे हुए जाहिल चिड़े-चिड़ियों को दीन का रास्ता बताऊँ। मेरा नाम अली मोहम्मद है। यह देखो मेरे पास कुरान है। यह खुदा की आवाज है।' अबकी बार छोटे पेट वाली चिड़ियों में से कोई कुछ न बोली। वह कहती गयी 'अवतारों में विश्वास करना और बुतों को पूजना कुफ्र है। इस्लाम का रास्ता ही खुदा तक पहुँचने का अकेला रास्ता है। खुदा की बन्दियो, जागो! तीस रोजों और पाँच नमाजों वाले धर्म को अपनाओ, खुदा और उसके एकमात्र रसूल मुहम्मद में विश्वास करो। आओ मेरे साथ आओ। बहिश्त का रास्ता तुम्हारे लिए खुला है।' दो एक चिड़ियाँ उठीं और उसके साथ दूसरे कोने में जा खड़ी हुईं।

"अब तीसरी की बारी थी। उसने अपने गले में एक छोटी-सी कृपाण पहन रखी थी। वह बोली 'मेरा नाम करनैलसिंह है। मैं गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह का धर्म लेकर तुम्हारे पास आयी हूँ।' लेकिन तभी अली मुहम्मद ने टोका, 'लेकिन तुम्हारे सिर पर केश तो हैं ही नहीं।' करनैलसिंह का चेहरा एक क्षण के लिए फीका पड़ा पर दूसरे ही क्षण उसने कहा 'ठहरो! ठहरिये मैं अभी लेकर आती हूँ।' वह उड़ती-उड़ती उड़ती हुई पास के एक खेत में गयी जिसमें भुट्टे सड़े हुए थे। उसने एक

मुर्ट्टे की पूंछ उखाड़ी और अपने सिर पर बांधकर फिर सभा में उपस्थित हुई 'गुरु गोविन्दसिंह के शिष्यों के लिये पांच ककार बहुत जरूरी हैं। देखो यह मेरे पास गुरु ग्रन्थ साहब हैं जो दस गुरुओं की ज्योति स्वरूप हैं। मैं आयी तो हिन्दू धर्म की रक्षा करने हूं, उसने खरपात्री और उसके अनुयायियों की ओर देखकर कहा, 'लेकिन अगर तुम लोगों ने भी कुछ गड़बड़ की तो यह कृपाण देख लेना' खरपात्री का चिमटा फड़का पर यह अवसर लड़ने के अनुकूल नहीं था, इसलिए वह चुप ही रही। लेकिन श्रोताओं पर उसकी नंगी कृपाण का अच्छा असर पड़ा क्योंकि तीन-चार चिड़ियां उठकर उसके पास आ गईं। उसने और भी गर्म कर कहा— 'मेरा धर्म बहादुरों का धर्म है, यहां हथेली पर सिर रखकर आने वाले प्रवेश पाते हैं; जिसे अपनी जान का मोह हो, वह दूर रहे। लेकिन जिन्हें प्रत्यक्ष अकाल पुरुष के सचखंड दरबार में चलना हो, वे मेरे साथ आयें।'

"छोटे पेट वाली चिड़िया बेचारी घबरा गई। वे सोच ही नहीं पा रही थीं कि क्या किया जाय कि पूछताछ शुरू हो गयी। हर चिड़िया के पास जाकर वे चारों धर्मनेत्रियाँ खड़ी हो जातीं और पूछतीं कि वह किस धर्म को मानती है। कोई चिड़िया उन चारों को देखती और जिससे उसे सबसे ज्यादा डर लगता उसके कोने में जाकर बैठ जाती। कोई उनकी बगलों में दबे हुए कागजों के बड़े-बड़े पुलन्दों को देखती और जिसका पुलन्दा सबसे बड़ा होता उसके साथ चली जाती। कोई उनकी आवाज के आधार पर अपने लायक धर्म को चुनती तो कोई उनकी लम्बाई के आधार पर। लेकिन अधिकांश इतनी घबराई हुई थीं कि वे जल्दी में चाहे जिसका नाम ले देतीं, हालांकि वे किसी भी धर्म के नाम का उच्चारण तक ठीक नहीं कर पाती थीं। इस तरह थोड़ी ही देर में सभी चिड़ियाँ चार कोनों में बंट गईं। सिर्फ एक चिड़ा बचा रहा। चारों नेत्रियों ने भड़क कर उससे पूछा: 'तुम कौन हो?' 'मैं चिड़ा हूँ' वह बोला। 'अबे मूर्ख, हम पूछती हैं तुम हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिख हो या ईसाई?' चारों ने बिगड़ कर कहा, 'मैं तो बस चिड़ा हूँ, और कुछ भी नहीं' वह अपनी बात पर अड़ा रहा। 'नास्तिक है! मारो साले को!' चारों नेत्रियों ने अपने-अपने अनुयायियों का आह्वान किया और खुद भी उस पर टूट पड़ीं।

[illegible] ने ठंडी सांस ली। चिड़े ने चौंक कर उसकी [illegible] डूब गया था कि उसे अपने और

होगा नहीं तो मरेगा !' धर्मनिष्ठ चिड़ी कहती, 'क्या तुम अपने दुश्मनों के बेटे-बेटियों से विवाह करोगे ? विवाह की क्या बात हम किसी दूसरे धर्म वालों का छुआ हुआ पानी भी नहीं पियेंगे।'

चिड़ी यह सब सुन रही थी लेकिन उसके छोटे-से दिल में एक छोटा-सा प्रश्न अटक रहा था, वह मौका देख रही थी कि कब चिड़ा थोड़ा ठहरे कि वह अपना प्रश्न पूछे ? उसके रुकते ही चिड़िया ने एकाएक पूछा : "लेकिन चिड़े ! नास्तिक कौन होता है ?"

"नास्तिक !" चिड़े ने शब्द पर जोर देकर कहा—"यही प्रश्न उस दिन शाम को उस चिड़े की बूढ़ी माँ ने उसके बाप से पूछा था। और उसने रुंधी हुई बोली में कहा था—'नन्हें की माँ, तुम्हारा बेटा ईश्वर में विश्वास नहीं करता था, इसलिए उन्होंने उसे मार डाला, वह नास्तिक था।' 'लेकिन सच-सच बताना नन्हें के बाबा ! क्या तुम ईश्वर में विश्वास करते हो, उसको जानते हो ?' रोती हुई आँखों से बूढ़ी चिड़ी ने फिर पूछा—और चिड़े का धैर्य टूट गया। वह जोर-जोर से रोने लगा और कहने लगा कि यह सब हम गरीबों के खिलाफ मोटे पेट वाली चिड़ियों का षड्यन्त्र है, वे पता नहीं हमें किन उलझनों में डाल रही हैं। हम कुछ नहीं समझते, इन सब बातों को। और बूढ़ी चिड़िया ने फिर कहा—'पर मेरे नन्हें ने तो ईश्वर के बारे में कुछ भी नहीं कहा था, उसे उन्होंने क्यों मार डाला। उसने तो सिर्फ यही कहा था कि वह चिड़ा है, और क्या हम-तुम चिड़े-चिड़ियाँ नहीं हैं नन्हे के बाबा ?' नन्हें के बाबा ने स्वीकार किया कि अब तक वे चिड़े-चिड़ियाँ ही थे पर अब चिड़े-चिड़ियाँ नहीं रहे हैं। वे अब या तो हिन्दू हैं या मुसलमान या सिख या ईसाई।

"तो, तो मैं भी नास्तिक हूँ।" चिड़िया ने एकाएक चिड़े की कहानी को बीच में रोककर अपना मत निश्चित किया। "हूँ" चिड़े ने गम्भीरता-पूर्वक कहानी जारी रखी। "आज तुम नास्तिक हो सकती हो और कह सकती हो कि तुम नास्तिक हो। पर उस समय किसी के लिए यह सम्भव नहीं था कि अपने आपको नास्तिक कहे और जिन्दा रह सके। हालांकि यह बात नहीं थी कि सबने इन धर्मों को पूरी तरह स्वीकार कर लिया हो। इनमें से अधिकांश तो उनका क, ख, भी नहीं समझती थीं। जो

थोड़ी बहुत समझदार थीं वे तर्क करतीं, अपनी नेत्रियों से पूछतीं—ईश्वर कौन है? क्या करता है? कहाँ रहता है? पर उन्हें इन बातों का कोई जवाब नहीं मिलता। उन्हें कहा जाता है कि वे कुतर्क कर रही हैं। ईश्वर को देखने के लिए उसमें विश्वास करना जरूरी है और वे नहीं समझ पातीं कि आखिर बिना देखे वे उसमें कैसे विश्वास करें, पर चुप रह जातीं।

"उस दिन से छोटे पेट वाली चिड़ियाँ चार अलग-अलग पेड़ों पर रहने लगी थीं।" चिड़ा फिर अपनी कहानी पर आया—"कोई चिड़िया कभी भूली-भटकी किसी दूसरे धर्म वालों के पेड़ पर चली जाती तो वहाँ की चिड़ियाँ उसे चोंचों से मार-मार कर भगा देतीं। कभी एक पेड़ की चिड़ियाँ दूसरे पेड़ की चिड़ियों पर आरोप लगातीं कि उनमें से किसी ने उनके पेड़ का एक पत्ता तोड़ डाला है या यह कि उन्होंने उनकी धर्म पुस्तक का अपमान किया है, और उन पर हमला कर देतीं। घमासान लड़ाई होती और चिड़ियों के खून से जंगल की धरती लाल हो जाती। और मोटे पेट वाली, दूरबीन वाली चिड़ियाँ खुश थीं कि अब उनसे कोई नहीं लड़ता है सब चुपचाप उनकी दूरबीन से दाने बीन-बीन कर लाती हैं और उनके भंडार भरती हैं। लेकिन मेहनती चिड़ियों की भूख [illegible] को [illegible] थी।

"एक दिन शाम को कुछ हिन्दू चिड़ियों ने सरदारों से पूछा, 'क्या है कि हम सब मेहनत मजदूरी करती हैं फिर भी हमें भर पेट खाना नहीं नसीब होता है और ये लोग (उनका मतलब दूरबीन की पूजा करने वालों से था) बिना मेहनत किये मौज उड़ाते हैं।' क्षण-भर के लिए उस बूढ़े चिड़े का चेहरा पीला पड़ा, लगा कि वह कोई बड़ा भूत देखने के लिए अपने को तैयार कर रहा है, लेकिन दूसरे ही क्षण उसने मंद्र स्वर में कहना शुरू किया, 'बहुत खोटी बात है, उन लोगों ने पिछले जन्म में अच्छे काम किए थे और तुमने पाप। इसीलिए तुम्हें पिछले पापों का दण्ड [illegible]
[illegible] के [illegible] का [illegible]। [illegible]
[illegible] नहीं [illegible] कि [illegible]'
[illegible] एक [illegible]

और गुरुपान्नो जी ने बताया कि तुम्हारी आत्मा अमर है, तुम्हारा शरीर मर जाता है लेकिन यह नही मरती, यह फिर जन्म लेती है। यह नई समस्या थी—'आत्मा' और यह 'अमर'। बिचारा सिर झुकाकर बैठ गया। लेकिन जैसी कि चिड़ियों की आदत होती है, चिड़े ने फिर कहानी आगे बढ़ाई :

"धीरे-धीरे चारो पेड़ों वाली चिड़ियाँ फिर आपस मे मिलने-जुलने लगी। उनमें से कुछ बुद्धिमान चिड़ियों ने सोचा कि क्या हुआ जो हमारे धर्म अलग-अलग है आखिर हम विश्वास तो एक ही शक्ति में करती है (हालांकि वे नहीं जानती थी कि वे किस शक्ति में विश्वास करती हैं) लेकिन शेष चिड़ियों की इन बातो मे कोई रुचि न थी। वे बुद्धिमान चिड़ियों से पूछती : हमें तो यह बताओ कि कभी हमें भी भरपेट खाना खाने को मिलेगा या नही ? एक ने थोड़ी देर सोचा और बोली : देखो ! तुम्हारी भूख की जिम्मेदार तुम्हारी वे बहिनें नही है जिन्हें तुम लोग मोटे पेट वाली कहती हो। वास्तव मे सब बुराइयों की जड़ दूरबीन है। जब दूरबीन नहीं थी सब आराम से रहती थी। हम सब एक साथ चलकर अपनी दूरबीन वाली बहिनों से प्रार्थना करेंगी कि वे दूरबीनों को छोड़ दें और हम सब पुराने जमाने की तरह आँख से दाने खोजना शुरू कर दें। 'लेकिन मोटे पेट वाली दूरबीन क्यों छोडने लगी।' एक चिड़िया ने शंका की। 'वे नहीं छोड़ेंगी तो हम सत्याग्रह करेंगी। वे हमारी बहिनें हैं हम उनको कोई नुकसान नहीं पहुँचाना चाहतीं। हम उपवास करके उन पर नैतिक दबाव डालेंगी, जिससे हमारी आत्मा की भी शुद्धि होगी। 'नैतिक दबाव', 'आत्मा की शुद्धि'—चिड़ियाँ सोच रही थी कि यह भी उसी की बोली में बोल रही हैं जिसमें हमारी नेत्रियाँ बोलती है और जो हमारे अब तक समझ मे नही आती। फिर उनको न तो यही जचता था कि अपने को आधी भूखी रहने से बचाने के लिए पूरी भूखी रहा करें और न यही बात उनकी समझ मे आती थी कि अब जब जंगल मे दाने खोजना इतना मुश्किल हो गया है कैसे वे बिना दूरबीन के दाने खोजेंगी।

"तभी एक दूसरी चिड़िया उनके सामने आयी। वह बोली, 'देखो मैंने रास्ता खोज लिया है। तुम लोग मेरे साथ चलो और हम सब लोग मोटे

पेट वाली चिड़ियों से दाने माँगेंगी। हमारा 'दाना-दान-यज्ञ' ही सारी समस्याओं का एक मात्र हल है। कुछ उसके साथ चलीं पर चीप ने मुँह बिचका दिया—'हुँ! माँग कर कब तक पेट भर सकेंगी।'

"इधर कुछ लड़ाकू चिड़ियों ने तय किया कि हम खारों पेड़ों वाली चिड़ियाँ मिलकर मोटे पेट वाली चिड़ियों से लड़ें और उनकी दूरबीनें तथा दाने सब छीन लें। फिर दूरबीनें भी सबकी हों दाने भी सबके। सब लोग दाने बीन-बीन कर एक जगह इकट्ठे कर दें फिर सब मिलकर पेट भर खायें। एक चिड़िया कहीं से एक कपड़े का टुकड़ा लाई और दूसरी एक सरकण्डे की सींक। दो-तीन चिड़ियों ने मिलकर उस कपड़े के टुकड़े को सींक से बाँध दिया और एक चिड़िया उसे लेकर आगे-आगे चली। चारों पेड़ों की लड़ाकू चिड़ियाँ उसके साथ हो गईं। पर मोटे पेट वाली चिड़ियों ने अपनी फौज भेजकर उन पर हमला कर दिया। चिड़ियाँ लहूलुहान हो गयीं। उनका झंडा उनके खून से लाल हो गया। लेकिन तब से उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे तब तक लड़ती रहेंगी जब तक कि सब दूरबीनों, सारे जंगल और सब दानों पर उनका अधिकार नहीं हो जाता।"

मैं क्यों होऊँ मुसलमान। तू होजा हिन्दू।" दोनों कुछ देर चुप रहे।
चिड़े ने कहा "एक काम क्यों नहीं करती ?" "क्या ?" चिड़ी बोली
"न तू हिन्दू रह न मैं मुसलमान रहती हूँ। दोनों सहज स्वाभावि
चिड़िया धर्म अपना लें !" "चिड़िया धर्म ! क्या मतलब ?" "मतल
यह है कि हम किसी भी धर्म को न मानें और साथ रहने लगें।" लेकि
रहेंगे कहाँ ?" चिड़ी चिंतित होकर बोली। "कहीं भी" चिड़े ने लापर
वाही से कहा "जहाँ धर्मों के गुलाम न रहते हों।" "अच्छा !" चिड़ी ने
अपने गले मे पड़ा तागा जोर से खींच कर तोड़ डाला "ले मैं तो आगई
वापस चिड़िया धर्म मे लेकिन तू अपनी पूँछ का क्या करेगा ?" चिड़ी ने
मजा लेते हुए कहा। चिड़ा खिसियाया—"अब यह तो कट गयी सो
कटी ही रहेगी। अब यही हो सकता है कि हमारे जो बाल-बच्चे हों उनकी
पूँछ सलामत रहे।" और उस दिन से दोनों एक पेड़ पर जाकर रहने
लगे।

जब हिन्दू और मुसलमान चिड़ियों को इस घटना का पता लगा तो
उन्होंने अपने-अपने धर्मों के अनुयायियों की मीटिंग बुलाई। हिन्दू चिड़ियों
ने एक आर्य समाजी चिड़िया का यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार
किया कि यह सब मुसलमानों की बदमाशी है कि उन्होंने एक हिन्दू लड़की
को भ्रष्ट किया है। और कि हम उसको फिर से शुद्ध करके पवित्र हिन्दू
धर्म की छाया मे लाने के लिए कोई उपाय उठा न रखेंगे। इधर मुसलमान
चिड़ियों का खयाल था कि हिन्दुओं ने अपनी एक खूबसूरत लौंडिया के
ज़रिये एक सच्चे मुसलमान को काफिर बना दिया है। तब हिन्दुओं की
ओर से वह आर्यसमाजी चिड़िया और मुसलमानों की ओर से एक काज़ी
चिड़िया उन्हे समझाने के लिए भेजी गयी। आर्यसमाजी ने चिड़ी को
अलग बुलाया और काज़ी ने चिड़े को।

आर्यसमाजी चिड़ी से बोली 'तुम कैसी मूर्ख हो जो इस दुष्ट म्लेच्छ
की चिकनी-चुपड़ी बातों मे आ गयी। अपने धर्म, अपनी बिरादरी, अपने
माँ-बाप का कुछ तो खयाल किया होता। चलो अब भी कुछ नहीं बिगड़ा
है, समाज के सारे लोग तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं। सबने ही तुम्हारी
शुद्धि कर दी जाएगी और तुम फिर हिन्दू हो जाओगी।' 'लेकिन ...

क्या होगा ?' 'क्या होगा ?' आर्यसमाजी कठोर हुई, 'होगा यह कि तुम फिर किसी हिन्दू से शादी कर सकोगी।' अचानक एक क्षण रुककर चिड़िया बोली 'क्या आप मेरी शादी अपने लड़के से करने को तैयार हैं ? मेरे लड़के से।' आर्यसमाजी चिड़िया चौंकी 'उसकी तो सगाई एक दूरबीन वाली चिड़िया की बेटी से तय हो चुकी है।' 'फिर'... 'फिर' उसने रुकते हुए कहा, 'फिर तुम इस म्लेच्छ के साथ तो भी चुकी हो, यह कैसे हो सकता है ?' 'तब मुझे आपके हिन्दू धर्म से कुछ लेना देना नहीं।' चिड़िया का स्वर निश्चयात्मक था। आर्यसमाजी चिड़िया का चेहरा घृणा से विकृत हो गया। उसने जैसे अपनी सारी घृणा को एक ही वाक्य में समेटकर कहा 'कमीनी ! कम्युनिस्ट कहीं की।'

इधर काजी चिड़िया ने चिड़े से कहा 'क्या तुम्हें कोई मुसलमान चिड़िया नहीं मिली जो तुम इस काफिर के चक्कर में आये। और फिर अगर उससे ऐसी मुहब्बत ही थी तो इसे मुसलमान बनाकर इससे निकाह करते, तुम्हें कौन रोकता था। चलो मस्जिद में चलकर तौबा करो और अगर तुम्हारी यह माशूका तुमसे सच्ची मुहब्बत करती है तो उसे भी ले चलो।'

लेकिन चिड़े ने ऐसा जवाब दिया कि काजी के मुँह का सारा रंग बिगड़ गया। वह बिना उसकी ओर देखे कूकती हुई उड़ गई।

अभी दूरबीन वाली, मोटे पेट वाली और बिना दूरबीन वाली छोटे पेट वाली चिड़ियों में लड़ाई चल रही है। लेकिन सहज स्वाभाविक चिड़िया धर्म वाले पीपल के पेड़ पर रोज एक न एक जोड़ा चिड़ियों का बढ़ता ही जाता है। और आजकल न कोई काजी या आर्यसमाजी और न कोई पादरी उन्हें समझाने नहीं आता।